बुनियादी शिक्षा
एक नई कोशिश
गार्ग– मई– 2011
अंक – 30

बुनियादी शिक्षा : एक नई कोशिश

अंक–30

परामर्श
हृदय कांत दीवान
सुदर्शन आयंगार

संपादक मण्डल
भागचंद्र कुमावत
वि.वि. सिंह
कुमार अनुपम

सलाहकार
एम.पी. शर्मा
गोविन्दभाई रावल
भरत जोशी

चित्रांकन
प्रशात सोनी

कंप्यूटर सेटिंग
इसरार अहमद

टाइपिंग सहयोग
शाकिर अहमद

संपादकीय पता
विद्या भवन शिक्षा संदर्भ केंद्र
फतेहपुरा, मोहन सिंह मेहता मार्ग
उदयपुर (राज.) 313 004
फोन : (0294) 2451497
Email : vbsudr@yahoo.com

इस अंक में

संपादकीय	1
चिट्ठी–पत्री	2
जीवन की जीवन द्वारा शिक्षा ज्योति भाई देसाई	4
वर्तमान शिक्षा की विफलता और नई तालीम शिवदत्त मिश्र	10
बदलाव के लिए बुनियादी शिक्षा हृदयकांत दीवान	14
रवीन्द्रनाथ टैगोर के शिक्षा दर्शन और बुनियादी शिक्षा में समरूपता विश्व विजया सिंह	16
शिक्षा एक पहेली या समाधान प्रो. भरत जोशी	20
शिक्षा पर नव–उदारवादी आक्रमण अनिल सद्गोपाल	22
व्यक्तित्व का अद्वैत विकास तथा शिक्षा में कर्मयोग दयाल चन्द्र सोनी	27
जो नित्य नई रहती है वही नई तालीम गोविन्द रावल	34
युवाओं पर शक या भरोसा के.आर. शर्मा	37
कर्म और शिक्षा का सम्बन्ध भानू भाई भट्ट	40
एक रास्ता यह भी साधना देवेश	43
गतिविधि के नमूने	46

इस अंक की सहयोग राशि व्यक्तिगत डाक/कुरियर खर्च सहित : 50 रुपए, वार्षिक– 200/– रुपए तथा संस्था हेतु वार्षिक सहयोग राशि 400/–रुपए
चेक/ड्राफ्ट – विद्या भवन सोसायटी के नाम से बनवाएं।

सौजन्य : राष्ट्रीय ग्रामीण संस्थान परिषद, हैदराबाद

संपादकीय

देश की आज़ादी के बाद बुनियादी तालीम की योजना और उसके विचार को राष्ट्रीय शिक्षा के रूप में स्थापित करने की दिशा में व्यापक प्रयास देश के कई हिस्सों में किए गए थे। किन्तु यह प्रयास समयानुकूल नहीं हुए।

इस तालीम के सबसे महत्त्वपूर्ण पहलुओं के स्थान पर उसे पुराने प्रतिरूपों में उपयोगित पद्धतियों व दायरों के अन्तर्गत ही खंगाला गया। यह प्रयोग, एक जीवन्त शिक्षा को समाज के बदलते स्वरूप के साथ चलाए रखने के स्थान पर आडम्बरों को बनाए रखने में परिवर्तित हो गया। शिक्षाविद् और प्रशासक इस शिक्षा विचार की गहराई, उसके निहितार्थ और उसके असली मकसद को समाज की अपेक्षाओं के संदर्भ में परिभाषित नहीं कर पाए। स्कूली शिक्षा व ज्ञान अपने संदर्भ से कटाव, अमूर्तता व सामान्य जीवन में उपयोगिता के बीच संतुलन नहीं खोज पाए।

पिछले दो दशकों में बुनियादी शिक्षा के प्रमुख पहलुओं को पुनः पहचानने की आवश्यकता महसूस होने लगी है। अनेकानेक तरह से यह बात सामने आ रही है कि शिक्षा को बच्चों के सीखने के आयामों और उनके सामाजिक–सांस्कृतिक व आर्थिक संदर्भों के साथ जोड़कर ही देखना चाहिए। इसका हम विवेचन करें कि उनके अनुभवों को, उनकी भाषा को कक्षा में क्या जगह दी जानी चाहिए। यह भी समझ में आया है कि स्कूली शिक्षा अभी बच्चों को अपने समाज से, कार्य से व अपने आस–पास से काट रही है। इससे वे बातें विकसित नहीं हो पा रही, जो हम चाहते हैं। इसी कारण अब लोगों की निगाह बुनियादी शिक्षा पर पुनः गई है। अनेकों प्रयासों से धीरे–धीरे यह स्पष्ट हो गया है कि बुनियादी तालीम पर परम्परा के भीतर ही काम करने के बजाय इसे वृह्द शिक्षा प्रणाली के परिप्रेक्ष्य में देखा जाए और आज की शिक्षा के मुख्य संदर्भों और सरोकारों के साथ जोड़ा जाए। यदि इस विचार को राष्ट्रीय शिक्षा व्यवस्था में लाना है, तो हमें बुनियादी तालीम से जुड़े अहम पहलुओं, तत्वों और सिद्धान्तों – अहिंसा, अनुबन्ध, स्वावलम्बन, सहयोग, श्रम के प्रति निष्ठा, हाथ से काम, काम से ज्ञान का निर्माण आदि को समग्ररूप से समझना होगा। उन्हें स्कूली शिक्षा में संभव बनाने के लिए हमें मिलकर गंभीर प्रयास करने होंगे। इस प्रयास के शुरूआत के कदम छोटे हो सकते हैं लेकिन हम इस दिशा में धीरे–धीरे आगे बढ़ सकते हैं।

यह एक विडम्बना है कि पिछले 70 वर्षों से ज्यादा से सभी स्तरों पर बुनियादी तालीम के तत्त्वों की प्रशंसा होती रही है। लेकिन यथार्थ में इन्हें अपनाने का कोई प्रयास नहीं हुआ है। इसमें एक गलती यह हो सकती है कि यह गैर व्यावहारिक है और चल नहीं सकती। यह सवाल वाजिब है, किन्तु यह भी सच है कि इसके दार्शनिक पहलू का महत्त्व साफ़ होता जा रहा है। स्कूली शिक्षा की लोगों को सहृदय व शिक्षित बनाने में गैर प्रासंगिकता पर कई बार चिन्ता जाहिर की गई है। ये सुझाव भी प्रखरता से दिए गए कि स्कूली शिक्षा के स्वरूप में हाथों से कार्य करना, सृजन करना, समाज में रमना, संवेदनशील बनना, अपनी भूमिका पहचान कर कुछ कर पाना आदि सभी शामिल हैं। यह विचार अलग–अलग तरह से आता रहा है कि शिक्षा की यांत्रिकता, इसकी अलगाव पैदा करने की प्रवृत्ति, बच्चों से बचपन, जिज्ञासा व सृजनात्मकता छिनना आदि सभी के लिए शिक्षा का विकल्प चाहिए। ऐसे में बुनियादी शिक्षा के सिद्धान्तों व उन तक पहुंचने के तरीकों को पुनः जाँच कर, उनमें उपयुक्त बदलाव का रास्ता खोजना आवश्यक है। इस अंक में हम कुछ ऐसे लेख दे रहे हैं जो इस मसले पर प्रकाश डालते हैं व आगे बढ़ने की राह को इंगित कर रहे हैं।

चिट्ठी–पत्री

'बुनियादी शिक्षा : एक नई कोशिश' का अंक 28 पढ़कर प्रतीत हुआ कि वर्षों के पश्चात् बीसवीं शताब्दी के तृतीय–चतुर्थ दशक के समकक्ष ही भारतीय–परिवेश प्रभावित शैक्षिक चिन्तन के सम्बन्ध में सार्थक पठनीय सामग्री उपलब्ध हुई है। बुनियादी शिक्षा के प्रवर्तक निश्चित ही आदर्शोन्मुख क्रियात्मक जीवनयापन करने में प्रवृत्त करानेवाली श्रम आधारित शिक्षा के पक्षधर थे, जिनसे केन्द्र सरकार का मोहभंग नेहरू युग के साथ–साथ ही हो गया। इस अंक विशेष के सभी लेख एवं बुनियादी शिक्षा सशक्तिकरण हेतु आयोजित राष्ट्रीय सम्मेलन का प्रतिवेदन पढ़कर अनेक कर्मनिष्ठ शिक्षकों को वर्तमान शैक्षिक जगत् की विषमतम स्थिति में भी आशा–विश्वास का प्रकाश–पुंज निश्चित ही दृष्टिगोचर होगा। देखा–जाए तो स्पष्ट होगा कि स्वातन्त्र्योत्तर भारत में केन्द्र अथवा राज्य सरकारों के द्वारा शिक्षा से सम्बद्ध जितनी अधिक योजनाओं, समितियों, आयोगों व कार्यगोष्ठियों का गठन किया गया है, उनकी संस्तुतियां उतनी ही तत्परता से अवहेलित भी की गई हैं। यहां तक कि विज्ञान शिक्षण से सम्बन्धित एक सफलतम प्रायोजना को भी 2002 में बन्द करवा दिया गया। परिणामतः शिक्षा प्रणाली का जो स्वरूप विकसित किया जा रहा है वह व्यक्ति को केवल बौद्धिक व शारीरिक धरातल पर ही जीने के लिए तैयार कर रहा है। उद्योगपतियों, राजनेताओं और नौकरशाही के द्वारा पोषित जो शिक्षा–तंत्र विकसित हो रहा है वह बाज़ारवाद के वर्चस्व से अभिभूत है। अतः वैश्वीकरण के नाम पर शिक्षा के द्वारा व्यक्ति के जीवन मूल्यों का विकास अथवा सामाजिक सरोकार सभी बाज़ार की वस्तु बनकर बिक्री हेतु विज्ञापित किए जा रहे हैं। संचार क्रांति के परिणामस्वरूप शिक्षा में जिस एकांगी भाव का विकास हो रहा है, उसमें स्थानीयता अथवा सामान्य जन–जीवन की आवश्यकता– अपेक्षाओं की पूर्ति के लिए कोई स्थान नहीं रहा है– ऐसे समय में 'बुनियादी शिक्षा : एक नई कोशिश' अंक 28 के लेखों में व्यक्त वैचारिक–प्रक्रिया में शिक्षा की वर्तमान व्यवस्था में व्याप्त आत्मघाती व्याधियों के निस्तारण की सम्भावना देखी जा सकती है– विशेषतः अंक का प्रथम लेख जिसमें बुनियादी शिक्षा का आधुनिक परिप्रेक्ष्य में विश्लेषणात्मक विवेचन किया गया है– निश्चित ही लेखक श्री दीवान इस सारगर्भित लेख के लिए बधाई के पात्र हैं। हो सकता है बुनियादी शिक्षा के स्वरूप पुनर्निर्धारण में 'एक नई कोशिश' का यह बौद्धिक प्रयास भारतीय समरस जीवनमूल्यों के विकास का नियन्ता बने।

इस दिशा में कतिपय अनुत्तरित लेकिन ज्वलंत प्रश्नों का उल्लेख अभीष्ट है–

1. विद्यालयी शिक्षा स्वदेशी वातावरण में उद्यम–आधारित हो, यह श्रेष्ठतम परिकल्पना है क्योंकि बालक के ज्ञान, और अवबोध की वृद्धि श्रम आधारित कार्यों से अधिक होती है, लेकिन वह अपनी उत्पादित सामग्री से विद्यालय का व्यय भार क्यों उठाए? बालक को उत्पादक के रूप में क्यों समझा जाए? शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 की संवैधानिक संकल्पना के अन्तर्गत 6 से 14 वर्षीय बालकों को निःशुल्क अनिवार्य शिक्षा देने का प्रावधान किया जा चुका है और सरकार की इस दिशा में अनेक योजनाएं कार्यरत हैं।
2. बालक को उद्योग, पर्यावरण और उसके परिवेश में सह–सम्बन्ध स्थापन हेतु विद्यालय में प्रयुक्त श्रम विविध क्रियाओं में अध्यापक की भूमिका का क्या स्वरूप होगा, इसका निर्धारण कैसे व कौन करेगा?
3. हस्तकौशल के साथ–साथ अन्य बौद्धिक कार्यक्रमों के सम्यक् प्रस्तुतीकरण हेतु बालकों की अभिव्यक्ति–विकास के क्या उपादान प्रयुक्त होंगे?
4. बालकों के संवेदनात्मक भावपक्ष को पुष्ट करने के लिए ललितकलाओं के प्रशिक्षण की क्या व्यवस्था होगी?

5. वर्तमान सामान्य शिक्षा के साथ इस शिक्षा का समवाय कैसे स्थापित किया जाएगा? अभिजात्यवर्ग के बालकों को इसकी परिधि में किस प्रकार सम्मिलित किया जाएगा? शैक्षणिक साधन सम्पन्नता की दृष्टि से निजी विद्यालय ही नहीं, राजकीय विद्यालयों में भी गहरी असमानता है।

6. बुनियादी शिक्षा के पाठ्यक्रम–निर्माण अथवा उसके सम्यक् क्रियान्वयन में शिक्षक व संचालकों की स्वतंत्रता की सीमा रेखा कौन निश्चित करेगा? उसका आधार क्या होगा?

अधिक विस्तार अपेक्षित नहीं, लेकिन यह भी सत्य है कि ऐसे अनेक प्रश्नों के सम्भावित उत्तरों की प्रतिच्छाया में ही इस नवीन संकल्पना की सार्थकता व सफलता निर्भर है। ज्ञान, कौशल, अभिवृत्ति और जीवनमूल्यों का निर्धारण– ये चारों मानव जीवन के आधार हैं। बालकों के व्यक्तित्व विकास हेतु बुनियादी शिक्षा की यह नई कोशिश इनके मध्य संतुलित समवाय स्थापित करने में समर्थ हो सके– इससे अधिक शिक्षा जगत् में कोई अन्य उपादेय परिवर्तन नहीं हो सकता। बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भिक दशकों की स्वदेशी शिक्षा के अभियान का नवीन संदर्भों में यह प्रस्तुतीकरण निश्चित ही सम्पादक समूह व प्रकाशक की बौद्धिक जागरूकता का प्रतीक है– सभी को साधुवाद इस अंक के लिए।

डॉ सत्या के. शर्मा
प्रोफेसर शिक्षा (सेवानिवृत)
विद्या भवन जी.एस. टीचर्स कॉलेज
उदयपुर–313004

'बुनियादी शिक्षा' का फरवरी–जुलाई 10 का अंक गूजरात विद्यापीठ के नई तालीम प्रोजेक्ट द्वारा कल मुझे प्राप्त हुआ।

मेरा लेख आपने कष्ट उठाकर हिन्दी करके प्रकाशित किया, अतः अभारी हूं।

यूनेस्को की केस स्टडी में 'लोक भारती' को जोड़ा नहीं गया था। यह बात मैंने बतायी थी। अतः कुल मिलाकर हिन्दी कर मेरी बात आपने फैलाई अतः धन्यवाद।

ज्योति भाई देसाई
वेड़छी, सूरत (गुजरात)

'बुनियादी शिक्षा : एक नई कोशिश' का संयुक्त अंक 26–27 मिला। धन्यवाद। आपके पास बहुत अच्छी संपादन कला है। उसके सलाहकार में आपने मेरा नाम भी लिखा है। इसलिए मैं आपका आभारी हूं। ये आपकी मेरे लिए प्रीति का द्योतक है। मैं अपने लेख भेजने की कोशिश करूंगा।

आप अपने बी.एड. के छात्रों को लेकर हमारे यहां तीन दिन रहे, इसके मीठे संस्मरण आज भी हमारे अध्यापक और छात्र याद करते हैं। कृपया आपने यहां जो प्रदर्शनी लगाई थी उसकी जिरोक्स कॉपी भेजने का कष्ट उठायें। शर्मा जी, प्राचार्य जी तथा सभी स्टाफ़ और छात्रों को भी हमारा स्मरण कहना। सुमति आपको याद करती है। आपके परिवार में सभी अच्छे होंगे।

गोविन्दभाई रावल
विश्वमंगलम अनेरा
त. हिम्मतनगर (गुजरात)

जीवन की जीवन द्वारा शिक्षा

★ ज्योति भाई देसाई

''इस वर्ष ग्रामीण प्राथमिक शाला में अनुभव लेने का एक शिविर हमने कर्नाटक के गांवों में लगाने का सोचा है। इसके बारे में हमारे मन में संदेह हुआ है पर हमें सोचना होगा।'' मेरे साथी अध्यापकों ने यह प्रस्ताव रख दिया।

''कहिये ना ! हम सबके प्रयत्नों से ही यह काम कर पायेंगे। अतः जो सारे संदेह सामने आए हैं,

★ गांधी विद्यापीठ, नहर कांटे, वेड़छी, सूरत।

उन्हें दूर करके ही आगे क़दम रखेंगे।'' मैंने कहा ''कर्नाटक में सबसे बड़ा प्रश्न भाषा का आयेगा, जैसा दिखता है। गांव के बच्चे ही नहीं बड़े आदमी भी कितनी हिन्दी समझते होंगे? ऐसी परिस्थिति में कैसे कोई शिक्षा का काम करना संभव होगा?''

''यहां गांव की शाला के बच्चे कन्नड़ भी लिखना नहीं जानते होंगे।''

''बड़ी समस्या तो यह है कि हमारे ग्रेज्युएट शिक्षार्थी अंग्रेज़ी भाषा सिखानेवाले बनने जा रहे हैं। उन्हें क्या अनुभव प्राप्त होंगे।''

ऐसी शंकाओं और संदेहों का ढेर साथ में लिए हुए हमने कर्नाटक जाने का निर्णय आख़िरकार ले लिया। यह प्रश्न केवल हमारे प्राध्यापकों के लिए नहीं था वरन् बी.एड. करनेवाले हमारे प्रशिक्षणार्थियों की भी यही सारी उलझनें थी। उन्हीं की आवाज़ मेरे सामने खड़ी कर दी गयी थी।

कर्नाटक में यह शिविर लगाने का न्यौता धारवाड़ के श्री हिरेमथजी के द्वारा ही आया था। ऐसे न्यौते हमें अलग–अलग प्रदेश की संस्थाओं से प्राप्त होते रहते थे।

ज़माने से कर्नाटक का उत्तरी भाग तुंगभद्रा नदी से समृद्ध होता रहा था। परन्तु औद्योगीकरण एवं विकास के नाम पर जैसे पूरे देश की नदियां प्रदूषित की गयी हैं, ऐसा ही तुंगभद्रा– 'तुंगा गंगा एक ही माता' माननेवाले प्रदेश को बरबाद किया गया। सन् 1980 में 'इंडिया टुडे' के सामयिक अंक में एक सर्वेक्षण प्रसिद्ध हुआ था। इस सर्वेक्षण में बताया गया कि कर्नाटक के उत्तरी भाग के 40 गांवों की खेती नाकाम हो गई थी, पीने का पानी गांव के पीने लायक नहीं था। स्कूल के मकान पर छाये खपरैल भी धुएंवाली राख से मिट्टी हो गए थे। ऐसी हालत में आवाज़ उठाने का हिरेमथजी जैसे नौजवान ने बीड़ा उठाया था। उनके साथ कोई 5–6 नौजवान स्वयंसेवकों का दल था उन्होंने 'समाज परिवर्तन समुदाय' के नाम की एक संस्था शुरू की थी। ''क्या आप हमारे इन गांवों में आकर जनजागृति बढ़ाने में सहायता करेंगे?'' हिरेमथजी की इस मांग को हमारे वेड़छी के साथियों ने स्वीकारा था।

बात यह थी कि इसके पहले हमने बिहार, मध्य प्रदेश, राजस्थान जैसे प्रदेशों में गांवों की शालाओं में ऐसे 'ग्राम शिक्षा शिविर' के अनुभव हमारे प्रशिक्षणार्थियों को दिये थे। परन्तु, यह तो ऐसे प्रदेश थे जहां हिन्दी भाषा उपयोग में लायी जाती थी। दक्षिण की भाषा का न हमें परिचय था, न हममें से कोई भी उस विस्तार में कभी रहे थे। अतः ये कन्नड़ भाषा के प्रदेश में कैसे शिक्षा का काम कर पायेंगे यह उलझन होना सहज था।

मेरे साथियों का पूरा समाधान तो नहीं हुआ, किंतु नई तालीम का प्रधान सूत्र तो हम वेड़छी की परम्परा में ध्यान में रखकर चलते थे। 'जीवन की जीवन द्वारा शिक्षा' को प्रधानता देकर रास्ता निकाल लेंगे, ऐसा तय करके बीड़ा उठाया।

मैं और हिरेमथजी धारवाड़ ज़िले के कोई 20 गांवों का दौरा करने गये। वहां की प्राथमिक शालाओं की परिस्थिति देखकर हमने अंदाज़ लगाया था। हम कोई राजकीय काम करने नहीं निकले थे, यह हमने पक्का कर लिया। शिक्षा के द्वारा जनजागृति का काम करने का यह प्रयत्न होगा। यह बात वहां की शालाओं, शिक्षकों और प्राचार्यों को बता दी गयी। गांव के सज्जन बुज़ुर्गों के साथ एक बैठक करके इस शैक्षिक प्रयोग को करने के बारे में चर्चा की गई।

इसकी पूर्व तैयारी के लिए हमने एक योजना बनाई,

जिसमें यह तय किया कि तीन गांवों में हमारा शालाओं में ही पड़ाव होगा। हमने ऐसे गांव चुने कि जिनके इर्दगिर्द और कोई 4 गांव हों जो डेढ़/दो किलोमीटर के फ़ासले पर हों। इस प्रकार हर पड़ाव में रहकर हम 5 गांवों में काम कर पाये और कुल 15 दिन में 15 गांवों में हमारा शैक्षिक प्रयत्न किया गया। पड़ाव में तीनों गांव हमारे दल को भोजनादि का खड्डा, स्वच्छ पानी का संग्रह आदि की व्यवस्था करनी थी। यह काम पूर्व सूचना के आधार पर गांव और स्थानीय शिक्षकों को पूरा करना था। किन्तु फिर भी हम अपनी आवश्यकतानुसार अपने 5 दिन के निवास स्थल की सुचारूरूप से व्यवस्था कर लेते थे। यही तो पहला दृश्य गांव के समक्ष आ जाता था। लोग बड़े कुतूहल से और चोकवास से हमारा

गांव में एक घर पर मैं गया था और मैंने पूछा कि आपके बच्चे कहां हैं? छोड़िये जी, जब से आप लोग यहां आए हैं, घर में कोई बच्चा नहीं रहता। खाना खाने भी नहीं आते हैं। आप सबने जो जादू कर दिया है, बच्चे मुश्किल से रात को घर आते हैं।

के वास्ते अनाज और बर्तन आदि उपलब्ध करवाते रहे। खाना हमारा दल ख़ुद पका लेगा। ऐसे ही 15 गांव जो तुंगभद्रा के प्रदूषण से पीडित हैं को चुन लिया गया। ऐसा करने में केवल एक ही गांव जो तुंगा नदी के पूर्वी किनारे वाला था, को तय किया गया। बाक़ी के सारे 14 गांव पश्चिम किनारे की ओर थे।

यह भी तय हुआ कि हर गांव के खेतों की मिट्टी की हम जांच करेंगे। पानी के स्रोतों की जांच करेंगे और किसानों के खेत की मिट्टी का 'पीएच' निकाल कर देंगे। इन 15 गांवों के शाला प्राचार्य, ग्राम प्रतिनिधि से यह सारा समझने का काम किया गया और हमारा दल एक महीने के बाद वहां जा पहुंचा।

हमने 50 साथियों का एक दल बनाया। 44 बी.एड. करनेवाले शिक्षार्थी भाई/बहनें और 4 प्राध्यापक, 1 उद्योग सहायक एवं 1 रसोई पकानेवाला साथी।

पड़ाव पर पहुंचते ही उसको ठीक करना हमारा अहम काम था। हमें पड़ाव की पूरी सफ़ाई, पायखाने तैयार करना, भोजन कक्ष, रसोई घर, चूल्हे, कचरे यह निर्माण का प्रयत्न झेल रहे थे। स्कूल के बच्चे तो दौड़–दौड़ कर सब कामों में अपना हाथ बंटाने आ ही जाते थे। उनके वास्ते स्कूल का एक नया रूप ही सामने आ रहा था।

गांव में एक घर पर मैं गया था और मैंने पूछा कि आपके बच्चे कहां हैं? छोड़िये जी, जब से आप लोग यहां आए हैं, घर में कोई बच्चा नहीं रहता। खाना खाने भी नहीं आते हैं। आप सबने जो जादू कर दिया है, बच्चे मुश्किल से रात को घर आते हैं।

हम गांव के खेतों का नक़्शा बनाने और चार्ट आदि बनाने के काग़ज़ साथ ले गये थे। गांव का नक़्शा तो हमें हर एक जगह से बना बनाया प्राप्त हो जाता था। मिट्टी की जांच के वास्ते हम रासायनिक पेटी या किट साथ ले गये थे, जिसमें कांच की टेस्ट ट्यूब/ जांच नलियां रहती थीं। 'पीएच' कम/ज़्यादा का निर्णय मिट्टी का रसायन के साथ मिलावट से जो रंग निर्माण हो उससे तय करना था। इस रंग के चार्ट तैयार कर रखे थे। लिटमस पेपर पर पानी का क्या प्रभाव होता है, उसके भी चार्ट तैयार थे। एक कार्यक्रम चरखे पर सूत कताई का भी रखा था।

सब साथियों के लिए चरखे भी साथ ले गये थे। सुव्यवस्थित रूप से कमरों में उचित स्थानों पर चार्ट आदि लगाने की यह सब प्रारंभिक व्यवस्था का काम 3/4 घंटे में कर लिया जाता था। वास्तव में गांव में यह नया खेल शुरू हो गया और उसमें गांव के हर व्यक्ति से उत्साह भरा सहयोग प्राप्त हुआ था।

हमारी दिनचर्या जो वेड़छी में रहती थी, वही वहां भी यथावत रूप से लगाई हुई थी। सुबह 5 बजे जगना, 5.30 बजे प्रार्थना से रात 10 बजे तक का हर कार्यक्रम ठीक समय पर होता रहे, इसका ध्यान रखा जाता था। यह भी तो गांव के सामने हमारे जीवन का एक स्वरूप था। मानो 50 लोगों का एक यंत्र चल रहा था। इस यंत्र का हर अंग अपनी पूरी ताक़त से मशीन को क्षमतापूर्ण चलाने में लगा रहा था। यह कथा तो पहले ही पड़ाव से पूरे ज़िले में फैल गयी।

दूसरे पड़ाव का क़िस्सा

बैलगाड़ियों से हमारा सारा सामान, बिस्तरे, चरखे, शैक्षिक साधन आदि पहुंच जाने पर नये स्थल को सजाने में हम लगे थे। मैं अपना चरखा निकाल के सूत कातने बैठा। बाक़ी साथी पड़ाव को सजाने में लगे थे। तुरन्त ही 15–20 लड़के/लड़कियां मेरे इर्दगिर्द इकट्ठे हो गये। बहुत उत्सुक नज़रों से, हमारे बहुत नज़दीक आने लगे, तो मैंने कहा– ''जरा हट के बैठो, हल्ला मत करो''। एक स्थानीय स्वयंसेवक से मैंने पूछा ''ये बच्चे ऐसा क्यों कर रहे हैं?'' उन्होंने कहा, ''बच्चे बहुत खुश हैं, आपका आना आनन्ददायी है।'' मैंने कहा 'उन्हें हमसे डर नहीं लगता? इतने सारे हम यहां आ गये हैं तो।'' उस मित्र ने बच्चों को कन्नड़ में यही पूछा और उसने बच्चों के उत्तर मुझे बताए। ''भाई जी बच्चे कहते हैं हम नहीं पूरे गांव की माताओं का भी यह विचार हो गया है कि गुजरातवाले गुरुजी किसी को डांटते भी नहीं हैं। मारनेवाली छड़ी तो वे रखते ही नहीं।''

यह हमारे नये पड़ाव पर पहुंचने के मुश्किल से एक घंटे के अंदर की घटना है। हां बच्चों को तो बिल्कुल विश्वास हो गया था कि अलग ढंग से सिखानेवाले गुरुजी आये हैं। वास्तविकता तो यह थी कि बच्चे ही क्यों पूरे कर्नाटक में यह चर्चा चल रही थी। गुजरातवाले शिक्षकों ने हमारे बच्चों को इतना आकर्षित कर लिया है कि मानो उन्हीं के ये बच्चे हैं।

यह हमारे नये पड़ाव पर पहुंचने के मुश्किल से एक घंटे के अंदर की घटना है। हां बच्चों को तो बिल्कुल विश्वास हो गया था कि अलग ढंग से सिखानेवाले गुरुजी आये हैं। वास्तविकता तो यह थी कि बच्चे ही क्यों पूरे कर्नाटक में यह चर्चा चल रही थी। गुजरातवाले शिक्षकों ने हमारे बच्चों को इतना आकर्षित कर लिया है कि मानो उन्हीं के ये बच्चे हैं।

शाला में प्रधान प्रवृत्ति, गांव के खेतों की मिट्टी की रासायनिक जांच की लगाई गयी थी। उसमें हर किसान के खेत की मिट्टी प्राप्त करना और उसकी जांच के बाद प्राप्त निरीक्षण में– अम्लता 'पीएच' कितना है, उसको स्पष्ट करना था। खेत कहां है, किस व्यक्ति का है और जांच के बाद उसके ऊपर प्रदूषण का कितना प्रभाव हुआ है? की जानकारी लिखनी थी।

अतः बच्चों को 5–6 की अपनी टोली में जाकर 5–6 खेत की मिट्टी प्राप्त करनी होती थी। फिर शाला

में रखी जांच पेटी से द्रव लेकर जांच नली (टेस्ट ट्यूब) में डालकर मिट्टी को हिलाकर जो रंग दिखाई दे, उससे निर्णय करना और फिर गुरुजी को दिखाने के बाद किसान के नाम के सामने उस परिणाम को व्यक्त करना था। ऐसा ही काम पानी के स्रोतों का भी करना था।

यहां तो पूरे गांव के बच्चे जा रहे हैं। मिट्टी कैसे प्राप्त करना है? हर खेत के थार के कोने और मध्य से मिट्टी लाकर, उसको मिलाकर, एक करना है। हर नमूने को तीन बार रसायन से जांचना है। सहज ही था हर किसान को और उनके बच्चों को लग रहा था मानो पूरे गांव की यह तो अपनी आवश्यकता की पूर्ति हो रही है, यह सामने आ जाता था।

इस काम में स्थानीय शिक्षकों की सबसे बड़ी उलझन यह थी कि यह छोटी सी 6 इंच की कांच की नली को कहीं बच्चे फोड़ न दें। हमें यह बताया गया कि ''हमारे बच्चे इस काम को नहीं कर पायेंगे, हम ख़ुद करेंगे।'' हमने उनसे पूछा ''क्यों?''

'ये बच्चे शैतान हैं।' सारी नलियां लेकर वे दिनभर तोड़–फोड़ करेंगे। सारा रसायन बरबाद कर देंगे। इन्हें हम सालों से पढ़ाते हैं और जानते हैं, ये आपके गुजरात के बच्चे थोड़े हैं?''

हमने उन शिक्षकों को समझाया ''देखिये, हमारी तैयारी सब प्रकार की है। किंतु बच्चे अच्छी तरह ही काम करेंगे, यह विश्वास लेकर काम प्रारंभ करना है। हमारी मानिए, बच्चों को ही सारे काम करने का आनंद लेने दीजिये। प्रश्न केवल जांच करवाने का नहीं है। विज्ञान का काम कैसे होता है। कितनी सावधानी रखनी है। कैसे निर्णय करना है। मनगढ़ंत नहीं चलाना है। वास्तव में प्रयोग करने पर जैसे परिणाम प्राप्त होते हैं, उन्हीं को स्वीकारना है। विज्ञान की अहम भूमिका तो यह है कि ख़ुद जांच कर निर्णय करो।

''ये बच्चे शैतान हैं। सारी नलियां लेकर वे दिनभर तोड़–फोड़ करेंगे। सारा रसायन बरबाद कर देंगे। इन्हें हम सालों से पढ़ाते हैं और जानते हैं, ये आपके गुजरात के बच्चे थोड़े हैं?''

हमने उन शिक्षकों को समझाया ''देखिये, हमारी तैयारी सब प्रकार की है। किंतु बच्चे अच्छी तरह ही काम करेंगे, यह विश्वास लेकर काम प्रारंभ करना है। हमारी मानिए, बच्चों को ही सारे काम करने का आनंद लेने दीजिये। प्रश्न केवल जांच करवाने का नहीं है। विज्ञान का काम कैसे होता है। कितनी सावधानी रखनी है। कैसे निर्णय करना है। मनगढ़ंत नहीं चलाना है।''

इस काम में स्थानीय शिक्षकों की सबसे बड़ी उलझन यह थी कि यह छोटी सी 6 इंच की कांच की नली को कहीं बच्चे फोड़ न दें। हमें यह बताया गया कि ''हमारे बच्चे इस काम को नहीं कर पायेंगे, हम ख़ुद करेंगे।'' हमने उनसे पूछा ''क्यों?''

'ये बच्चे शैतान हैं।' सारी नलियां लेकर वे दिनभर तोड़–फोड़ करेंगे। सारा रसायन बरबाद कर देंगे। इन्हें हम सालों से पढ़ाते हैं और जानते हैं, ये आपके गुजरात के बच्चे थोड़े हैं?''

हमने उन शिक्षकों को समझाया ''देखिये, हमारी तैयारी सब प्रकार की है। किंतु बच्चे अच्छी तरह ही काम करेंगे, यह विश्वास लेकर काम प्रारंभ करना है। हमारी मानिए, बच्चों को ही सारे काम करने का आनंद लेने दीजिये। प्रश्न केवल जांच करवाने का नहीं है। विज्ञान का काम कैसे होता है। कितनी सावधानी रखनी है। कैसे निर्णय करना है। मनगढ़ंत नहीं चलाना है। वास्तव में प्रयोग करने पर जैसे परिणाम प्राप्त होते हैं, उन्हीं को स्वीकारना है। विज्ञान की अहम भूमिका तो यह है कि ख़ुद जांच कर निर्णय करो।

हमारा यह कहना, शिक्षकों को जंचना कठिन तो था, पर वे हमें बच्चों के ख़ुद ब ख़ुद प्रयोग करने देने से रोक नहीं पाये। अनुभव तो यह हुआ कि 15 गांवों के क़रीब 5000 बच्चों ने ये प्रयोग किये। हमारी एक भी –टेस्ट ट्यूब' (जांच नली) नहीं टूटी थी। बच्चों ने सिद्ध कर दिखाया कि हमें मौक़ा दीजिये, हम भी वैज्ञानिक की तरह ही काम कर दिखायेंगे।

आख़िरकार स्थानीय शिक्षकों को तो यह कहना

पड़ा कि ''हमने अपने बच्चों को पहचाना ही नहीं था। जिस लगन और उत्साह से ये बच्चे स्कूलों में आने लग गये, हम नहीं, गांव के गांव आश्चर्य से यह पूरी बात देख रहे हैं। हम सबका उत्साह ही नहीं वरन् जीवन भी बदल रहा है।''

ऊपर के सारे वर्णन का अहम अर्थ तो यही पेश करना है कि शिक्षा में भाषा का प्रश्न गौण हो गया। स्थानीय शिक्षकों की सहायता से अनुवाद तो करना होता था। पर यह मिट्टी लाना, उससे मिलाना, उसको जांचना, नक़्शे पर नोट करना, चौकसी से ये सारा करना, यह तो प्रत्यक्ष काम था। न इसमें किसी को भी व्याख्यान करना था न ही कहीं उपदेश से निर्णय करना था। गतिविधि द्वारा ही शिक्षा प्राप्त होती थी। और यह गतिविधि सीधी अपने और पूरे समाज की आवश्यकता को जोड़कर बनी हुई होने से, उसमें अपनेपन का शहद भी घुल–मिल गया था।

आगे और भी हमने काम उठाया था। रात्रि ग्राम मिलन में चौराहों पर प्रार्थना करने के बाद ''भस्मासुर' का नाटक करते थे। इसमें शाला के विद्यार्थी और हमारे शिक्षार्थी मिलकर प्रदूषण को समझाने का विचार पेश करते थे। उसमें भी केवल बिना बोले ही बात सामने साफ़ हो जाय, ऐसा सारा रचाया गया था।

15 गांव ही नहीं इर्दगिर्द के 25 गांवों के लोग रात्रि ग्राम मिलन में पहुंच जाते थे। हमारा आग्रह तो था कि यह कोई पार्टी पक्ष का काम नहीं, हमारे निजी जीवन को जिस तरह बरबाद किया जा रहा है, उसके ख़िलाफ़ हमें ठीक जानकारी प्राप्त करनी है। इसके लिए हमें प्रतिकार करने में भी लगना है। नौकरियां प्राप्त होंगी, समृद्ध होंगे, विकास के इन भुलावों को पहचानना है।

शिक्षा में भाषा का प्रश्न गौण हो गया। स्थानीय शिक्षकों की सहायता से अनुवाद तो करना होता था। पर यह मिट्टी लाना, उससे मिलाना, उसको जांचना, नक़्शे पर नोट करना, चौकसी से ये सारा करना, यह तो प्रत्यक्ष काम था। न इसमें किसी को भी व्याख्यान करना था न ही कहीं उपदेश से निर्णय करना था। गतिविधि द्वारा ही शिक्षा प्राप्त होती थी।

यह कर्नाटक के 15 दिन के कार्यक्रम की फलप्रद कहानी है। शिक्षा में ज्ञान, समाज, और काम को प्रधानता दें, तो शिक्षा उसी में निखर आती है। सारी गतिविधियां – प्रवृत्ति– अनेक वाद्ययंत्रों से भले ही निकलती हुई आवाज़ हो, पर संपूर्ण सुरीली सिमफोनी का आह्लाद अनुभव प्राप्त हो रहा था। अब काम यंत्रवत् नहीं था। हर्ष, उल्लास, आनन्दित प्राण से भरा हुआ माहौल निर्माण हो गया था।

अतः जीवन की जीवन के द्वारा शिक्षा का स्वरूप प्राप्त करने और ऐसे ही कार्यक्रम उठाते रहना है, ऐसा हम सब साथियों का विचार बन गया।

वर्तमान शिक्षा की विफ़लता और नई तालीम

★ शिवदत्त मिश्र

नई तालीम समिति सेवाग्राम द्वारा 23–24 अप्रैल, 2011 को सेवाग्राम, वर्धा में आयोजित 'राष्ट्रीय नई तालीम सम्मेलन' के विचार–पत्र का संपादित अंश यहां प्रस्तुत है।

आज शिक्षा के क्षेत्र में जैसी अराजकता व्याप्त है, शायद ही किसी अन्य क्षेत्र में होगी। बाज़ारवाद के शिकंजे में फंसी शिक्षा, आज एक बड़े व्यवसाय का रूप ले चुकी है, जिसमें लाभ कमाना ही मुख्य है। जगह–जगह शिक्षा की दुकानें खुली हैं, जहां विभिन्न आकर्षक आवरणों में लपेटकर शिक्षा को एक 'उत्पाद' की तरह बेचा जा रहा है और लोग अपनी आर्थिक स्थिति के अनुसार इन 'उत्पादों' को ख़रीद रहे हैं। अब तो शिक्षा क्षेत्र भी विदेशी निवेश के लिए खोला जा रहा है, ऐसे में 'व्यापार' की संभावनाएं और भी व्यापक होंगी। जहां एक ओर केन्द्र सरकार 'शिक्षा का अधिकार' कानून स्वीकृत करती है, वहीं दूसरी ओर राज्य सरकारें कहती हैं कि धन के अभाव में वे इसे लागू नहीं कर पायेंगी। जहां एक ओर सरकारी स्कूलों में मूलभूत सुविधाएं भी नहीं हैं, वहीं 'प्राइवेट स्कूल' ऐसे हैं जो होटलों की तरह पांच सितारा या सात सितारा श्रेणी के हैं। शिक्षा की पाठ्यवस्तु व गुणवत्ता तथा व्यक्तित्व विकास का जहां तक सम्बन्ध है उसमें तो शोचनीय गिरावट आयी है। बच्चों का बोझ, शारीरिक व मानसिक दोनों ही, बढ़ा है। अभिभावकों की चिन्ता बढ़ी है, पढ़े–लिखे लोगों की बेरोज़गारी बढ़ी है, समाज की समस्याएं तथा हिंसा, असमानता, शोषण, ग़रीबी, आदि बढ़ी है। वर्तमान शिक्षा इनमें से किसी भी समस्या का हल करने में न केवल असमर्थ सिद्ध हुई है बल्कि वह इनको बढ़ाने में ही सहयोग दे रही है। नौकरी के योग्य बनाने की इसकी एकमात्र उपयोगिता पर भी औद्योगिक व व्यावसायिक संगठनों ने यह कहकर प्रश्न चिह्न लगा दिया है कि 75 प्रतिशत पढ़े–लिखे लोग, रोज़गार के लायक नहीं

जहां एक ओर सरकारी स्कूलों में मूलभूत सुविधाएं भी नहीं हैं, वहीं 'प्राइवेट स्कूल' ऐसे हैं जो होटलों की तरह पांच सितारा या सात सितारा श्रेणी के हैं। शिक्षा की पाठ्यवस्तु व गुणवत्ता तथा व्यक्तित्व विकास का जहां तक सम्बन्ध है उसमें तो शोचनीय गिरावट आयी है। बच्चों का बोझ, शारीरिक व मानसिक दोनों ही, बढ़ा है। अभिभावकों की चिन्ता बढ़ी है, पढ़े–लिखे लोगों की बेरोज़गारी बढ़ी है, समाज की समस्याएं तथा हिंसा, असमानता, शोषण, ग़रीबी, आदि बढ़ी है।

★ नयी तालीम समिति, सेवाग्राम, वर्धा–442102 (महाराष्ट्र)।

हैं और यह साधारण विषयों में उपाधिधारकों के संदर्भ में नहीं बल्कि तथाकथित तकनीकी व व्यावसायिक शिक्षा के बारे में कहा गया है।

इसी तरह के अन्य प्रश्नों के संदर्भ में आज देश के तमाम शिक्षाशास्त्री नयी तालीम की ओर पुनः आकृष्ट हो रहे हैं। पिछले पांच दस वर्षों में देश के लगभग सभी शिक्षा सम्मेलनों, गोष्ठियों और परिचर्चाओं में नयी तालीम को पुनःप्रतिष्ठित करने की बात अधिक ज़ोर–शोर से उठने लगी है। महात्मा गांधी द्वारा प्रतिपादित 'नयी तालीम' शिक्षा योजना शैक्षणिक, और वैज्ञानिक दृष्टि से एक परिपूर्ण विचार है। इसपर लगभग सभी प्रतिष्ठित शिक्षाशास्त्री सहमत हैं। पूर्व के प्रयोगों से भी यह बात प्रमाणित हुई थी कि यदि नयी तालीम शिक्षण योजना को ठीक ढंग से लागू किया जाय, तो इसको इसके समस्त फलितार्थों सहित सफ़ल बनाया जा सकता है।

परन्तु यह बात भी ध्यान में रखनी आवश्यक है कि आज की नयी तालीम पूर्व की नयी तालीम की हूबहू नक़ल नहीं होगी। आज नयी तालीम पर विचार करते समय यह एक यक्ष प्रश्न है कि आज के शिक्षा के प्रवाह में रहने के लिए नयी तालीम में अनुकूलन को स्वीकार करें या अपनी निर्धारित सही दिशा में प्रवाह को बहाने के लिए प्रचंड प्रयास किया जाय? यदि अनुकूलन को स्वीकार करना है तो वह भी किस सीमा तक। अनुकूलन करने का क्या परिणाम हो सकता है, इस पर भी सोचना होगा। अनुकूलन की प्रक्रिया में भी यह सावधानी तो रखनी ही पड़ेगी कि इस प्रक्रिया में नयी तालीम के तत्त्वों के साथ छेड़–छाड़ न हो, पर तंत्र को तो आज की आवश्यकतानुसार व बदली परिस्थितियों के अनुरूप बदला ही जा सकता है।

वर्तमान संदर्भ में नयी तालीम शिक्षण पद्धति के अंतर्गत किन–किन नवीन उद्योगों को शामिल करना आवश्यक व उचित होगा? इन उद्योगों द्वारा शिक्षा किस तरह दी जा सकेगी। क्योंकि नयी तालीम में उद्योग सिखाना इतना महत्त्वपूर्ण नहीं है जितना उद्योग के माध्यम से समस्त शिक्षण का आयोजन करना। इसलिए कहीं ऐसा न हो कि उद्योग की शिक्षा ही प्रधान हो जाए और चरित्र निर्माण तथा व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास का प्रधान लक्ष्य गौण हो जाए। उद्योग के चुनाव पर उसकी उपयोगिता व परिणामों पर गम्भीरतापूर्वक विचार करने के बाद ही उसके बारे में उचित निर्णय करना श्रेयस्कर होगा।

नयी तालीम में उद्योग सिखाना इतना महत्त्वपूर्ण नहीं है जितना उद्योग के माध्यम से समस्त शिक्षण का आयोजन करना। इसलिए कहीं ऐसा न हो कि उद्योग की शिक्षा ही प्रधान हो जाए और चरित्र निर्माण तथा व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास का प्रधान लक्ष्य गौण हो जाए।

उद्योग की ही तरह नयी तालीम की शिक्षा योजना में निहित स्वावलम्बन के प्रश्न पर भी गंभीरतापूर्वक विचार आवश्यक है। आज के परिप्रेक्ष्य में क्या स्वावलम्बन को पुनः परिभाषित करने की आवश्यकता है? यदि हां, तो किस तरह के व किस सीमा तक के स्वावलम्बन की, इस पर भी ध्यान देना होगा। स्वावलम्बन, विद्यालय, ग्राम या समाज के स्तर का होगा यह भी सोचना आवश्यक है। स्वावलम्बन के प्रश्न पर विचार करते समय यह ध्यान रखने की आवश्यकता है कि गांधीजी ने शिक्षा में स्वावलम्बन के साथ यह भी कहा था कि विद्यालय में उत्पादित

होनेवाली वस्तुओं को सरकार ख़रीदेगी न कि विद्यालय को बाज़ार के बीच जाना होगा। आज बाज़ारवाद के ज़माने में इस पर गम्भीरतापूर्वक विचार करना आवश्यक लगता है।

यद्यपि नयी तालीम के मूल तत्त्व मातृभाषा के द्वारा शिक्षण को सभी शिक्षाशास्त्री स्वीकार करते हैं और आधुनिक खोजों से भी यह प्रमाणित हो चुका है कि मातृभाषा द्वारा शिक्षा देना, विशेषकर प्रारम्भिक शिक्षा, बच्चों के सर्वांगीण विकास के लिए अत्यंत आवश्यक है। परन्तु वास्तविकता तो यही है कि आज के कम्प्यूटर युग में अंग्रेज़ी माध्यम से शिक्षा देने का प्रचलन अत्यधिक बढ़ा है। अतः नयी तालीम के विद्यालय में अंग्रेज़ी का स्थान क्या होगा, होगा भी या नहीं। यदि होगा तो अंग्रेज़ी भाषा के तौर पर पढ़ाई जायेगी या माध्यम ही अंग्रेज़ी होगा, यदि भाषा के तौर पर पढ़ाई जायेगी तो किस कक्षा से, इस बारे में भी विचार करना आवश्यक है। इसके साथ ही अंग्रेज़ी भाषा के आधिपत्य को समाप्त करने तथा स्थानीय भाषाओं और राष्ट्रभाषा की महत्ता को बढ़ाने के संदर्भ में नयी तालीम की क्या भूमिका हो सकती है?

वर्तमान संदर्भों को ध्यान में रखते हुए नयी तालीम के पूर्व पाठ्यक्रम में क्या कुछ परिवर्तन करना आवश्यक है। यदि हां, तो किस तरह का? यदि किन्हीं अन्य विषयों को पाठ्यक्रम में शामिल करना है, तो नयी तालीम के उद्देश्य प्राप्त करने में ये किस तरह सहायक होंगे? तथा उनका चुने हुए उद्योगों के साथ किस तरह मेल बैठाया जायेगा? आदि प्रश्नों पर भी विचार करना आवश्यक होगा।

नयी तालीम को पुनः देश में प्रतिष्ठित करने के लिए, तथा इसे मुख्यधारा की शिक्षा व्यवस्था बनाने के लिए और क्या–क्या क़दम उठाने होंगे, इसपर भी विचार आवश्यक है। पहला काम तो जनमत को नयी तालीम के पक्ष में करने का लगता है, क्योंकि लोकतांत्रिक सरकारें भी जनमत के आगे तो झुकती ही हैं। इसलिए नयी तालीम को देशभर में प्रचारित–प्रसारित करने की अत्यन्त आवश्यकता है। इसके विभिन्न उपाय ढूंढ़ने होंगे। देश में नयी तालीम के अनुकूल वातावरण तैयार करने के लिए कई स्तरों पर एक साथ काम करना होगा। इसमें आंदोलन, सम्मेलन, नमूने के विद्यालय चलाना व शिक्षकों का प्रशिक्षण, जनता के बीच प्रचार–प्रसार आदि उपक्रमों के अतिरिक्त अन्य साधनों का भी योगदान हो सकता है। विशेषकर उस परिस्थिति में जबकि पढ़े–लिखे बेकारों की संख्या दिनों–दिन बहुत बढ़ती जा रही है और बेरोज़गार नवयुवक नवयुवतियां आपराधिक या असामाजिक गतिविधियों में पड़कर अपना व देश का बहुत बड़ा नुकसान कर रहे हैं। इसलिए 15 वर्ष से ऊपर के नवयुवकों व नवयुवतियों को लेकर यदि नयी तालीम का काम प्रारम्भ किया जाय तो इससे न केवल नयी तालीम की उपयोगिता व उत्कृष्टता ही प्रमाणित होगी बल्कि जनमत को नयी तालीम के पक्ष में करने के काम में भी मदद मिलेगी। इसी तरह के अन्य विकल्पों पर भी विचार हो सकता है।

नयी तालीम को पुनः देश में प्रतिष्ठित करने के लिए, तथा इसे मुख्यधारा की शिक्षा व्यवस्था बनाने के लिए और क्या–क्या क़दम उठाने होंगे, इसपर भी विचार आवश्यक है। पहला काम तो जनमत को नयी तालीम के पक्ष में करने का लगता है, क्योंकि लोकतांत्रिक सरकारें भी जनमत के आगे तो झुकती ही हैं।

इसी क्रम में, वर्तमान शिक्षा व्यवस्था की विफलता के

फलस्वरूप देश के कोने–कोने में वैकल्पिक शिक्षा के जो प्रयोग उभर रहे हैं उनमें समन्वय स्थापित करने, उनका समर्थन करने और उनमें नयी तालीम के तत्त्व को दाख़िल करने के लिए क्या–क्या करना चाहिए, इस पर गम्भीरतापूर्वक विचार करने की आवश्यकता है। क्योंकि यह नयी तालीम के सामने चुनौती भी है और अवसर भी। देश की शिक्षा व्यवस्था को नयी तालीम की ओर मोड़ने के संदर्भ में वैकल्पिक शिक्षा का प्रयोग कर रहे सभी प्रयोगवीर मिलकर समन्वित रूप से क्या प्रयास कर सकते हैं, इसपर भी सोचने की ज़रूरत महसूस होती है। नयी तालीम व वैकल्पिक शिक्षा के प्रयोगों के लिए एक अलग ''शिक्षा बोर्ड'' तथा विश्वविद्यालय प्रारम्भ करने पर भी विचार किया जाना चाहिए, क्योंकि तमाम प्रयोगवीर बिना नयी तालीम का नाम लिए, अधिकांशतः नयी तालीम का ही कार्य कर रहे हैं। इसलिए इस दिशा में गम्भीर प्रयास करने की आवश्यकता है।

अक्टूबर 2004 में, नयी तालीम की मां स्वरूपा श्रीमती आशादेवी आर्यनायकम् की जन्मशताब्दी समारोह के रूप में आयोजित, राष्ट्रीय नयी तालीम सम्मेलन में लिये गये निर्णय के अनुसार, जुलाई 2005 में नयी तालीम समिति ने, सेवाग्राम आश्रम परिसर में ''आनन्द निकेतन'' के नाम से एक नयी तालीम का विद्यालय प्रारम्भ किया था। इसे पूरी तरह से नयी तालीम के नमूने का विद्यालय तो नहीं कहा जा सकता, परन्तु फिर भी हम जितना यहां कर पाये हैं, उसके परिणाम अत्यन्त उत्साहजनक हैं और नयी तालीम शिक्षण पद्धति के मूल सिद्धान्तों को प्रमाणित करते हैं। पिछले पांच–दस वर्षों में हुए शोध कार्य तथा आनन्द निकेतन विद्यालय के शैक्षणिक अनुभवों से हमारा यह विश्वास दृढ़ हुआ है कि देशभर में कम से कम प्राथमिक शिक्षा के स्तर पर तो नयी तालीम को तुरन्त ही लागू किया जा सकता है।

वर्तमान शिक्षा व्यवस्था की विफलता के फलस्वरूप देश के कोने–कोने में वैकल्पिक शिक्षा के जो प्रयोग उभर रहे हैं उनमें समन्वय स्थापित करने, उनका समर्थन करने और उनमें नयी तालीम के तत्त्व को दाख़िल करने के लिए क्या–क्या करना चाहिए, इस पर गम्भीरतापूर्वक विचार करने की आवश्यकता है। क्योंकि यह नयी तालीम के सामने चुनौती भी है और अवसर भी।

आमंत्रित है आपके विचार

श्री शिवदत्त मिश्र के उपुर्यक्त विचारोत्प्रेरक लेख 'वर्तमान शिक्षा की विफ़लता और नई तालीम' में वर्तमान शिक्षा व्यवस्था की बदहाली और उसके विकल्प के रूप में नई तालीम को प्रस्तावित किया गया है। गांधीजी की नई तालीम के मूल स्वरूप में कुछ परिवर्तन अपेक्षित है, वे क्या होने चाहिए? क्या हो सकते हैं? इन पर एक संवाद और खुली चर्चा की आवश्यकता है। आपके विचार आमंत्रित हैं। हम यथा संभव उन्हें आगामी अंकों में प्रकाशित करना चाहेंगे।

सम्पादक

बुनियादी शिक्षा : एक नई कोशिश

बदलाव के लिए बुनियादी शिक्षा

★ हृदयकांत दीवान

विद्या भवन बुनियादी शिक्षा संदर्भ केन्द्र (विद्या भवन सोसायटी) द्वारा 'बुनियादी शिक्षा : आगे कैसे बढ़े', विषय पर 3–5 नवम्बर 2009 को विद्या भवन शिक्षक महाविद्यालय , उदयपुर में आयोजित राष्ट्रीय सेमिनार से उदृधत अंश–

बुनियादी शिक्षा का मतलब बदलाव की शिक्षा। जब हम शिक्षा की बात करते हैं, तो आमतौर पर यह कहा जाता है और एनसीएफ भी कहता है, शिक्षा ट्रांसफॉरमेशन के लिए है। मैं बुनियादी शिक्षा की बात नहीं कर रहा हूं, शिक्षा की बात कर रहा हूं। शिक्षा का एक लक्ष्य तो है बदलाव, लेकिन दूसरा लक्ष्य है सुदृढ़ करना। अगर हम सिर्फ़ बदलाव की शिक्षा की बात कर रहे हैं, तो बदलाव लानेवाले तो कर सकते हैं। अगर हम तय कर लें कि हम बाज़ार में एक ख़ास तरह का व्यवहार करेंगे, तो कोई ताक़त, ढांचे की पूरी व्यवस्था उस तरफ़ बढ़ने से नहीं रोक सकती। इसका मतलब यह हुआ कि सामाजिक एवं आर्थिक सरोकार शिक्षा के लिए महत्त्वपूर्ण है। शिक्षा यदि आर्थिक सरोकारों के लिए महत्त्वपूर्ण है, तो क्या तरीक़ा है हमारे पास, सामाजिक एवं आर्थिक सरोकार बदलने का? क्योंकि अभी जिस तरह से आर्थिक व

बुनियादी शिक्षा के संदर्भ में हम एक आदर्श, एक विकल्प और एक सम्भावना को लगातार परिष्कृत करके मुख्यधारा को एक परिणाम दिखाकर उसकी तरफ़ मोड़ने का प्रयास कर सकते हैं।

हमेशा हाशिये पर होते हैं। क्योंकि हाशिये पर रहकर आप मुख्यधारा को बदलने का प्रयास करते हैं, तो सवाल यह है कि अगर हम बुनियादी शिक्षा को बदलाव की शिक्षा मानते हैं तो क्या हम हाशिये पर रहकर काम करने के लिए तैयार हैं। बुनियादी शिक्षा के संदर्भ में हम एक आदर्श, एक विकल्प और एक सम्भावना को लगातार परिष्कृत करके मुख्यधारा को एक परिणाम दिखाकर उसकी तरफ़ मोड़ने का प्रयास सामाजिक सरोकार हैं, उसमें भी पूरी तरह उपभोक्तावादी सम्भावनाएं हैं, तो हम जिन शिक्षकों, बच्चों व जिन बच्चों के माता–पिताओं के बारे में बात करते हैं, उनको सब चीज़ों से विलग कैसे करें? क्या विलग करना सभ्य व उचित है? ये सवाल सोचने के हैं, क्योंकि अगर हम समग्र रूप से बुनियादी शिक्षा के बारे में बात करना चाहते हैं, तो यह बात तय है कि उसमें जब तक इंसान को अपनी आवश्यकताओं

★ विद्या भवन सोसयाटी, उदयपुर में शैक्षिक सलाहकार हैं।

के प्रति, अपने लक्ष्यों के प्रति, मूल्यों के प्रति एक दृष्टि नहीं होगी तब तक वो वास्तव में जी नहीं सकता। जिस तरह से बुनियादी शिक्षा में जीवन की दृष्टि की बात है, मुझे लगता है यह दूसरा महत्त्वपूर्ण सवाल है जो हमारे सामने है। तीसरी बात, यह है कि यह कल्पना कि बुनियादी शिक्षा के दर्शन में अगर शिक्षा ऐसी होगी जो समाज के अर्थ से जुड़ी है, तो हर बच्चे को हमारी अर्थव्यवस्था में जगह मिल पायेगी। इस पर एक बड़ा सवाल है, यह कि क्या हम बौद्धिक श्रम और इसमें भी लोगों को संचालित करने के श्रम का दाम और शारीरिक श्रम के दाम, दोनों बराबर कर सकते हैं। असल में बौद्धिक श्रम और शारीरिक श्रम के बीच जो खाई है, क्या इसको हम बदल सकते हैं? अगर हम इसको नहीं बदल सकते, तो क्या हम बच्चे जो स्कूल से निकलनेवाले हैं (बालक–बालिका) को इज़्ज़तवाली शिक्षा के अनुरूप अवसर उपलब्ध करवा सकते हैं? अगर हम इस तरफ़ सोच सकते हैं, तो हम बराबरी की शिक्षा–कॉमन स्कूल, बुनियादी शिक्षा की बुनियादी शर्तों के आधार पर शिक्षा की बात कर सकते हैं। मुझे लगता है कि ये सब महत्त्वपूर्ण सवाल हैं और इन सवालों को जानना बहुत ज़रूरी है। क्योंकि अगर हमें इस दिशा की तरफ़ बढ़ना है तो इन सवालों से भिड़कर ही बढ़ना है। अगर हमें यथार्थ की तरफ़ बढ़ना है तो यथार्थ के सामने रुकावटें क्या हैं, इसके बारे में हमें सोचना होगा और हम क्या कर सकते हैं, इस पर सोचना होगा।

सबसे पहला सवाल, इन सबके संदर्भ में है कि ये दायरे, क्या शिक्षा के दायरे में हैं या नहीं? अगर ये सवाल शिक्षा के दायरे में हैं, तो हम लोग जो शिक्षण संस्थाओं में हैं, इसके संदर्भ में कुछ रास्ते देख सकते हैं। अगर ये सवाल शिक्षा के दायरे के बाहर हैं, तो इसके लिए हमें एक नेतृत्व, शिक्षा की व्यवस्था के बाहर से चाहिए, जैसा कि गांधीजी, ज़ाकिर हुसैन और पूरे स्वतंत्रता आंदोलन ने दिया था। जो शिक्षक, शैक्षिक संस्थाएं और शिक्षा में काम करनेवाले अगर हम सब लोग इस परिवार को एक जुट कर लें इसके अलावा और भी लोग हैं, जो शायद इसमें जुड़ सकते हैं, तो फिर हम लोग जुड़कर इस दिशा में कुछ प्रयास कर सकते हैं। हमारे समाने कुछ सवाल हैं कि शिक्षण प्रशिक्षण महाविद्यालय में पाठ्यक्रम तय है और परीक्षा का तरीक़ा भी तय है, इसमें हम बुनियादी शिक्षा के तत्त्वों को कैसे जोड़ें? इस सवाल पर हमें मंथन करने की ज़रूरत है। अपने विचारों को सामने रखने की ज़रूरत है और फिर उन पर हम कोशिश करके देख सकते हैं, ताकि हम इस संवाद को और आगे ले जा सकें और यथार्थ से इन चीज़ों को जोड़ सकें। दूसरा सवाल, कुछ लोगों का मत है कि हम इनको उद्योग से तो नहीं जोड़ सकते, लेकिन विज्ञान में हम प्रयोग करवा सकते हैं। हम गणित में कुछ ऐसे सवाल दे सकते हैं, जो बच्चे के जीवन से जुड़े हैं। अगर हमें ये पर्याप्त नहीं लगते हैं, तो फिर और क्या हो सकता है? हमें इस संदर्भ में कुछ और स्पष्ट और सटीक उत्तर चाहिए। लेकिन कम से कम अगर हमें एक दिशा की झलक मिल सके, जो संभव हो, जिसकी तरफ़ हम आगे कुछ प्रयोग करने का प्रयास कर सकें। ताकि हम यह बता सकें, कि हमने यह करके देखा और इससे यह नतीज़ा निकला और हम और मदद चाहते हैं। हमारे पास दो ही विकल्प हैं, या तो हम कहें कि वर्तमान स्कूली शिक्षा का पाठ्यक्रम बिल्कुल नकारा है और बुनियादी शिक्षा का पाठ्यक्रम बिल्कुल फ़र्क़ होना चाहिए। फिर दूसरा विकल्प है, उस पाठ्यक्रम की झलक, अगर हम उसे सामने रख पायें तो हम मिलकर एक वैकल्पिक पाठ्यक्रम की रचना शुरू कर सकते हैं, जो बुनियादी शिक्षा के ढांचे के साथ चल सके।

रवीन्द्रनाथ टैगोर के 150 वें जयन्ती वर्ष पर विशेष

रवीन्द्रनाथ टैगोर के शिक्षा दर्शन और बुनियादी शिक्षा में समरूपता

★ विश्व विजया सिंह

सन् 1915 में दक्षिण अफ्रीका से भारत वापस आने पर गांधीजी अपने साथियों के साथ कुछ समय शांति निकेतन में रहे थे। वहां उन्होंने स्वावलम्बन का प्रयोग किया, जिसके संदर्भ में गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर ने टिप्पणी करते हुए कहा था कि इसमें स्वराज्य की चाबी मौजूद है।

1937 में गांधीजी ने 'नयी तालीम' के नाम से 'उद्योग केन्द्रित स्वावलम्बी शिक्षा' का प्रारूप देश के सामने रखा। उनके अनुसार– 'नयी तालीम तो जीवन की तालीम होनी चाहिए' या दूसरे शब्दों में कहें तो यह जीवन के लिए जीवन द्वारा शिक्षण है। नयी तालीम कर्म द्वारा, ग्रामोद्योग द्वारा और स्वावलम्बन द्वारा शिक्षा है। वे शिक्षा के द्वारा ऐसे नागरिक उत्पन्न करना चाहते थे जो स्वावलम्बी हों, आत्माभिमानी और संयमी हों।

गुरुदेव टैगोर का भी मानना था कि बालक निष्प्राण मूर्तियों की तरह न रहकर सक्रिय रचनात्मक कार्य करें। अपने लिए स्वयं ज्ञान कूप खोदें, पानी भरें और पिएं। इस कार्य में अध्यापक उनका पथ–प्रदर्शन करता रहे।

'रवीन्द्रनाथ का शिक्षादर्शन और विश्वभारती' के लेखक श्री सव्यसाची भट्टाचार्य के अनुसार 'छात्र के व्यक्तित्व निर्माण और जीवन निर्वाह दोनों के साधन के रूप में कर्म शिक्षा पर गांधी का ज़ोर, ठाकुर के श्रीनिकेतन के ग्रामीण स्कूल के निर्माण के मूल में स्थित विचारों से मिलता–जुलता था।' ऐसा लगता है, ग्रामीण शिक्षा के ठाकुर के विचार (व्यावसायिक शिक्षा में व्यावहारिक प्रशिक्षण, शारीरिक

★ पूर्व प्रधानाध्यापिका, विद्या भवन जूनियर स्कूल। वर्तमान में विद्या भवन सोसायटी में कार्यरत।

श्रम आदि पर ज़ोर) और बेसिक शिक्षा की वर्धा योजना में मूर्त गांधी की कर्म शिक्षा की धारणा में समरूपता है।

रवीन्द्रनाथ टैगोर के मतानुसार बच्चों का पूरा शरीर अभिव्यक्तिमय होता है। स्कूल में बैठे–बैठे सोचने को कहा जाता है। बच्चे निष्क्रिय बैठे विचार ग्रहण करने की आदत जल्द ही सीख लेते हैं। तब उनके मस्तिष्क को शारीरिक क्रिया की सहायता के बग़ैर ही सोचना पड़ता है। लेकिन सृजनात्मक कार्यों में मस्तिष्क समायोजक की तरह काम करता है। हम सोचने और व्यक्त करने के क्रम में श्रेष्ठ को प्राप्त करते हैं।

हृदय अर्थात् आत्मा तीनों के समान विकास से ही मनुष्य का मनुष्यत्व सधता है।

'गांधी की बेसिक शिक्षा की अवधारणा के प्रति ठाकुर की प्रतिक्रिया समर्थन की ही थी, हालांकि वे हस्तशिल्प में व्यावहारिक प्रशिक्षण पर अतिरिक्त ज़ोर और 'क्रीड़ा' और कलात्मक सृजन की बहिष्कृति की आलोचना करते थे।' (विश्वभारती न्यूज़ जनवरी 1938)

आधुनिक शिक्षाशास्त्री तथा तमाम मनोवैज्ञानिक इस तथ्य को स्वीकार करते हैं कि मातृभाषा में शिक्षण दिए जाने से विद्यार्थी सहजता, स्पष्टता तथा शीघ्रता से सीखते हैं और यह सीखने की स्वाभाविक प्रक्रिया भी है। भाषा के रूप में अंग्रेज़ी ही नहीं,

आधुनिक शिक्षाशास्त्री तथा तमाम मनोवैज्ञानिक इस तथ्य को स्वीकार करते हैं कि मातृभाषा में शिक्षण दिए जाने से विद्यार्थी सहजता, स्पष्टता तथा शीघ्रता से सीखते हैं और यह सीखने की स्वाभाविक प्रक्रिया भी है। भाषा के रूप में अंग्रेज़ी ही नहीं, किसी भी अन्य भाषा को सिखाने के प्रति गांधीजी का कोई विरोध नहीं था। किन्तु शिक्षा का माध्यम मातृभाषा ही होना चाहिए।

गांधीजी ने भी अपने शैक्षणिक प्रयोगों के माध्यम से यह अनुभव प्राप्त किया था कि बुद्धि का सच्चा विकास हाथ, पांव, कान, आंख आदि अवयवों के सदुपयोग से ही हो सकता है, पुस्तकों के अध्ययन से नहीं। वर्तमान शिक्षा–व्यवस्था में शरीर, हृदय और बुद्धि के बीच मेल न होने का अत्यंत विनाशकारी परिणाम हुआ है। यदि बचपन में बालकों के हृदय की वृत्तियों को उपयुक्त दिशा में मोड़ दिया जाए, उन्हें खेती, चरखा आदि के उपयोगी व उत्पादक काम में लगाया जाए और जिस उद्योग से उनके शरीर में कसाव आए, उस उद्योग की उपयोगिता तथा उसमें काम में लाए जानेवाले औज़ारों की बनावट आदि की जानकारी दी जाय, तो बुद्धि का विकास स्वाभाविक रूप से होगा। शरीर, बुद्धि और

किसी भी अन्य भाषा को सिखाने के प्रति गांधीजी का कोई विरोध नहीं था। किन्तु शिक्षा का माध्यम मातृभाषा ही होना चाहिए तथा दूसरी भाषा भी प्राथमिक शिक्षा के बाद ही सिखाई जानी चाहिए। गांधीजी का स्पष्ट मत था कि आज की शिक्षा में तो बच्चों के दिमाग़ में अधिक से अधिक सूचनाएं व जानकारी ठूंसने का ही कार्य किया जाता है। वह विचार करना तो सिखाती ही नहीं है और जो शिक्षा विचार करना नहीं सिखाती वह सही अर्थों में व्यर्थ है। इसके अलावा विदेशी भाषा द्वारा शिक्षा पाने में दिमाग़ पर जो बोझ पड़ता है वह असह्य है। इसके अलावा विदेशी भाषा के माध्यम से शिक्षा देने के कारण हम अपनी भाषाओं को भिखारी बना रहे हैं। इससे हमारे घरवाले और आसपास के लोग भी उस

ज्ञान से वंचित रह जाते हैं।

रवीन्द्रनाथ टैगोर के अनुसार 'शिक्षा का माध्यम मातृभाषा को ही माना जाए, क्योंकि विद्यार्थियों में मौलिक रचनात्मक चिन्तन उत्पन्न करने के लिए यह बहुत आवश्यक है।'

1892 में अपने एक लेख 'शिक्षार हेरफेर' में उन्होंने शिक्षा के माध्यम के रूप में मातृभाषा बंगला को अपनाने की वकालत की। उनका मानना था कि जब तक छात्रों और अध्यापकों की मातृभाषा ही शिक्षा का माध्यम न बनेगी, तब तक भारत में आधुनिक विश्वविद्यालय अलग–थलग पड़े रहेंगे। वे भारत में होंगे लेकिन भारतीय समाज के न होंगे।

रवीन्द्रनाथ और गांधी दोनों ही शिक्षा में प्रकृतिवादी विचारधारा के समर्थक थे। रवीन्द्रनाथ का मानना था कि सीखने के लिए प्रकृति की गोद अपेक्षित है, जहां वे जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति की स्वयं खोज करें, अपनी कठिनाइयों का समाधान ढूंढ़ें और जीवन बिताने की बजाय जीवन जीना सीख लें।

गुरुदेव ने शिक्षा में प्रकृति को अनेक दृष्टिकोणों से उपयेागी माना। उनके अनुसार प्रकृति स्वयं ही बड़ी मनोहारिणी और आकर्षक होती है। उसके मनोहर दृश्य, भौंरों का गुनगुनाना, झरनों का मधुर संगीत, पुष्पों की भीनी–भीनी सुगन्ध किसके क्लांत मन को शांति नहीं देती। अतः कलरव से दूर, प्रकृति की गोद में ही विद्यालय स्थित होने चाहिए ताकि बालकों में नवस्फूर्ति एवं शुद्धिकरण का अनायास ही प्रवेश हो जाए।

बचपन की भावनाएं, कल्पनाशक्ति के अपने वरदान की तरह ही जिधर मार्ग पाती हैं, बह निकलती हैं। इसीलिए बच्चे को गीत, संगीत, कविता और अगर वह चाहे तो नाटक और नृत्य की दुनिया में यात्रा करने की पूर्ण आज़ादी होनी चाहिए। उसे रंग, रेखा या चित्र में अपने विचारों की अभिव्यक्ति प्रकट करने देना चाहिए। नाटक का प्रदर्शन और अभिनय कला का अभ्यास सभी बच्चों के लिए अनिवार्य होना चाहिए। बच्चों को शरीर के सम्पूर्ण और सुचारू संचालन के ज़रिए भावनाओं की अभिव्यक्ति का मौक़ा दिया जाना चाहिए।

बचपन की भावनाएं, कल्पनाशक्ति के अपने वरदान की तरह ही जिधर मार्ग पाती हैं, बह निकलती हैं। इसीलिए बच्चे को गीत, संगीत, कविता और अगर वह चाहे तो नाटक और नृत्य की दुनिया में यात्रा करने की पूर्ण आज़ादी होनी चाहिए। उसे रंग, रेखा या चित्र में अपने विचारों की अभिव्यक्ति का लावण्य प्रकट करने देना चाहिए।

गांधीजी जीवन में संगीत का स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण मानते थे। वे किसी भी शिक्षा योजना में संगीत को आवश्यक मानते थे। उनका आग्रह था कि संगीत की शिक्षा का आरम्भ प्राथमिक शिक्षा से ही होना चाहिए। राष्ट्र के भावी नागरिकों के जीवन–कार्य की पक्की बुनियाद डालनी हो, तो क़वायद (व्यायाम), उद्योग, चित्रकारी और संगीत ज़रूरी है।

उन्होंने कहा कि शिक्षा का माध्यम ही किसी उद्योग को बनाना चाहिए और चुने हुए उद्योग के माध्यम से सभी विषयों की शिक्षा देनी चाहिए। शारीरिक श्रम द्वारा ही बच्चों का मानसिक विकास होना चाहिए। उद्योग को केन्द्र में रखकर दी जानेवाली शिक्षा का प्रधान उद्देश्य बालक का सर्वांगीण विकास है और आर्थिक स्वावलम्बन उसका आवश्यक परिणाम।

यह निर्विवाद तथ्य है कि बुनियादी शिक्षण योजना

में शिक्षक की भूमिका अतिशय महत्त्वपूर्ण व केन्द्रीय है। शिक्षक की तालीम ऐसी होनी चाहिए कि चन्द दस्तकारियों का अमली और शास्त्रीय दोनों तरह का ज्ञान उसके पास हो। यह भी ज़रूरी है कि शिक्षक अपने आसपास के समाज के जीवन और उनकी प्रवृत्तियों में दिलचस्पी रखते हों तथा स्कूल के बीच जो गहरा सम्बन्ध है, उसे अच्छी तरह समझते हों।

रवीन्द्रनाथ टैगोर के अनुसार 'जिनमें सहिष्णुता की भावना होती है, केवल ऐसे लोग अध्यापक होने के योग्य होते हैं। जिनका बच्चों से प्यार भरा लगाव होता है, उनमें धैर्य स्वभावतः आ जाता है। अध्यापकों को जिस अन्तर्निहित गंभीर समस्या से जूझना पड़ता है, वह यह है कि उन्हें जिनको देखना है, वे शक्ति और प्रभुता में उनकी बराबरी के नहीं होते।' अध्यापक के लिए एकदम तुच्छ या बिना किसी कारण के या फिर वास्तविक की बजाय किसी काल्पनिक कारण के चलते, अपने छात्रों के सामने धैर्य खो देना, उनकी खिल्ली उड़ाना, उन्हें अपमानित या दंडित करना एकदम आसान और संभव है। जहां कहीं छात्रों को गंभीर रूप से दंड देने के उदाहरण मिलते हैं, उनमें से अधिकांश मामलों में अध्यापक ही दोषी होते हैं। इसकी वज़ह यह है कि वे ख़ुद कमज़ोर दिमाग़ के होते हैं। इसीलिए अकारण कड़े होकर अपने कर्त्तव्यों और कार्यभारों से छुट्टी पा लेते हैं। क्षमा करना बहादुरी का ही विशेषाधिकार है, अगर धीरज की कमी है तो नैतिक बल का अभाव निश्चित है।

गुरुदेव ने शिक्षा को दो ध्रुवीय क्रिया माना है, जिसमें शिक्षक एवं विद्यार्थी की प्रमुखता है। दोनों के विचारों और भावों का शिक्षा की प्रक्रिया में आदान–प्रदान बहुत आवश्यक है, क्योंकि उसके बिना उनका मानसिक सम्मिलन संभव नहीं है।

शिक्षा तो सम्पूर्ण जीवन की शिक्षा होनी चाहिए। बच्चे अपने आसपास के वातावरण में संपर्क स्थापित करने की उत्कृट जिज्ञासा दिखाएं। उन्हें चारों तरफ़ से वस्तुओं को खोजना, शोधना और इकट्ठा करना चाहिए। अध्यापक भी निरीक्षण करें, खोजें और पाठ्यक्रम की किताबों से बाहर देख सकें और प्रत्यक्ष अनुभव में आनंद ग्रहण करें।

शाश्वत मूल्यों में दोनों की दृढ़ आस्था थी। गांधीजी ने सत्य और अहिंसा पर बहुत बल दिया। सत्य प्राप्ति के लिए अहिंसा, विश्वप्रेम और मानव–सेवा ही साधन है।

गुरुदेव ने शिक्षा को आध्यात्मिकता की पृष्ठभूमि पर आधारित किया है। वे शिक्षा को बालकों के सर्वांगीण विकास का साधन मानते हैं। शिक्षा मस्तिष्क को अंतिम सत्य को पाने योग्य बनाती है। शिक्षा का उद्देश्य बालकों को स्वावलम्बी बनाना, संयमी बनाना, विश्वबंधुत्व के सिद्धान्त को अपनाना और शाश्वत सत्यों की खोज करना है।

रवीन्द्रनाथ टैगोर के अनुसार 'जिनमें सहिष्णुता की भावना होती है, केवल ऐसे लोग अध्यापक होने के योग्य होते हैं। जिनका बच्चों से प्यार भरा लगाव होता है, उनमें धैर्य स्वभावतः आ जाता है। अध्यापकों को जिस अन्तर्निहित गंभीर समस्या से जूझना पड़ता है, वह यह है कि उन्हें जिनको देखना है, वे शक्ति और प्रभुता में उनकी बराबरी के नहीं होते।'

शिक्षा एक पहेली या समाधान?

★ प्रो. भरत जोशी

वर्तमान शिक्षा व्यवस्था की निष्फलताओं की ओर उंगली उठाने के लिए भारत में किसी को सोचना नहीं पड़ता। कोई भी व्यक्ति विफल शिक्षा की बातें करके सफल हो जाता है। प्राथमिक से लेकर उच्च शिक्षा तक किसी भी स्तर पर शिक्षा विफल हुई है, ऐसी बात की जा सकती है। ख़ास कर भारत में, स्वतंत्रता मिलने के पश्चात् शिक्षा कुछ नहीं कर पायी है। हालांकि शिक्षकों पर इसका अब ज़्यादा असर होता हो, ऐसा नहीं लगता है। यह एक स्थिति है। दूसरी ओर, सामाजिक विकास के ठेकेदार पान की दुकानों की तरह शिक्षा संस्थाएं खोल रहे हैं। वैश्वीकरण एवं उदारीकरण की बाज़ारू हवा चल रही है। सब कुछ बिकाऊ है। ''बिके या बेचो'' सेवाओं का बाज़ार ज़ोर पकड़ रहा है। सामाजिक विकास के व्यापारियों ने सेवा के नाम पर शिक्षा की दूकानें खोल दी हैं। बिके ऐसी चीज़, जैसा शिक्षा का स्वरूप गढ़ा जा रहा है। शिक्षा के ये व्यापारी सचमुच सेवाएं बेच रहे हैं और बच्चों, शिक्षकों, अभिभावकों और देश के भविष्य को ख़रीद रहे हैं? ये व्यापारी सस्ते में इन सेवाओं को ख़रीदते हैं और इनको महंगा बेच रहे हैं?

सामाजिक विकास के व्यापारियों ने सेवा के नाम पर शिक्षा की दूकानें खोल दी हैं। बिके ऐसी चीज़, जैसा शिक्षा का स्वरूप गढ़ा जा रहा है। शिक्षा के ये व्यापारी सचमुच सेवाएं बेच रहे हैं और बच्चों, शिक्षकों, अभिभावकों और देश के भविष्य को ख़रीद रहे हैं? ये व्यापारी सस्ते में इन सेवाओं को ख़रीदते हैं और इनको महंगा बेच रहे हैं?

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भारत में शिक्षा का स्वरूप बदल जाना चाहिए था। मैकॉले के द्वारा शुरू की गई शिक्षा व्यवस्था को समाप्त कर देने के लिए, सरकार से लेकर उस वक़्त के सूत्रधार भी कटिबद्ध थे। परन्तु, स्वतंत्रता के बाद मैकॉले की शिक्षा व्यवस्था को और अधिक प्रभावी ढंग से लागू किया गया। परिणामतः नई तालीम, मैकॉले शिक्षा व्यवस्था के सामानान्तर चलते–चलते क्षीण होती गई। नई तालीम की अधिकांश संस्थाएं, कभी भी मैकॉले शिक्षा व्यवस्था के आरोपित स्वरूप को नहीं छोड़ सकीं।

स्वतंत्रता के पश्चात् देश का विकास हुआ है। यह प्रश्न सरल भी है और कठिन भी। विकास को मापने के हमारे मापदण्ड कौन से हैं? विकास को प्राप्त करने की हमारी प्रक्रिया क्या है? मधुमेह के रोगी को क्या निम्न रक्तचाप की दवा देकर स्वस्थ किया जा सकता है? हमारी भावी अपेक्षाएं क्या हैं और वर्तमान को हम कैसे जी रहे हैं? कम्प्यूटर को दहेज में देनेवाले हम, भारत के विकास की कौन सी व्याख्या कर रहे हैं? विद्यालय में चलनेवाली

★ प्रोफेसर, गूजरात विद्यापीठ, अहमदाबाद में कार्यरत हैं।

पाठ्यचर्या, वर्गखंड की प्रक्रिया, शिक्षक का गौरव एवं विद्यार्थी की स्वतंत्रता हमारी चिंता का विषय है। शिक्षा की इस व्यवस्था से भारतीय अस्मिता उजागर नहीं होती है, यह चर्चा का विषय है। देश का विकास, दुनिया के दरवाज़े पर डंका बजा रहा है। आतंकवादियों के बंदूकों की आवाज़ सभी दिशाओं में गूंज रही है। रुपया मज़बूत बन रहा है। भारत की कंपनियां दुनिया की प्रथम पंक्ति की सूची में स्थान ले रही हैं। रास्ते हवाई पट्टी जैसे बन रहे हैं। यूरियावाले दूध की नदियां बह रही हैं। बहुराष्ट्रीय कंपनियां देश में घुसने के लिए धक्का–मुक्की कर रही हैं। पर्यावरण की सुरक्षा के लिए, किए जानेवाले करारों में हज़ारों वृक्षों से बने काग़ज़ का इस्तेमाल हो रहा है। छोटे से छोटा व्यक्ति मोबाइल पर बात कर रहा है, विश्व में भारतीय बुद्धिधन की मांग हो रही है। सारे जहां से अच्छा, हिन्दोस्तां हमारा, रहने को घर नहीं है, सारा जहां हमारा।

शिक्षा प्रजा का निर्माण करती है। शिक्षा औपचारिक हो या अनौपचारिक, देश के विकास को दिशा देती है। वर्गखंड में चलनेवाली पाठ्यचर्या देश को चलाती है। इसलिए राजव्यवस्था शिक्षा को अपने प्रभाव में रखने का निरन्तर प्रयत्न करती है। इसकी दृष्टि हमेशा पाठ्यचर्या पर होती है। सैद्धान्तिक रूप से पाठ्यचर्या प्रगट एवं प्रच्छन्न होती है। राज्य इन दोनों पर मज़बूत पकड़ रखता है। परन्तु, एक पाठ्यचर्या शिक्षक की स्वयं की होती है। अपने क्रियाकलाप के दौरान पाठ्यचर्या में निहित कार्यों का संपादन करते हुए शिक्षक स्वयं की पाठ्यचर्या का भी क्रियान्वयन करता है। शिक्षक का अपना व्यक्तित्व ख़ास पाठ्यचर्या को आकार देता है तथा उसका अनुसरण करता है और यह विद्यार्थियों में संक्रांत होता रहता है। पाठ्यचर्या बदले या राजव्यवस्था क्या फ़र्क़ पड़ता है? अधिगम औपचारिक हो या अनौपचारिक सीखनेवाला जहां से, जिससे भी सीखता है क्या उसका जीवन में क्रियान्वयन हो रहा है?

शिक्षा द्वारा उदात्त चरित्र का निर्माण होना चाहिए। बालक के शरीर, मन एवं आत्मा में जो उत्तम अंश पड़ा हुआ है, उसका सर्वांगीण विकास कर उसे बाहर लाने का नाम शिक्षा है। शिक्षा की चर्चा करते समय ऐसे विधान बहुत असरकारक होते हैं। प्रजा का चरित्र उदात्त हो, इससे कौन असहमत होगा? गांधीजी ने कहा इसलिए सब कहें और दूध को पलड़े में तौलें? क्या सीखना है? के विषय में स्पष्टता ज़रूरी है। सीखने की प्रक्रिया और जो सीखा गया है उसके मूल्यांकन के लिए क्या चरित्र निर्माण के पाठ पढ़कर विद्यार्थी इस पर निबंध लिखेंगे? विद्यार्थियों को जो सीखना है उसी का मूल्यांकन होना चाहिए। हमारी मूल्यांकन की व्यवस्था कैसी है? परीक्षाकक्ष में विद्यार्थी ऐसा क्या करते हैं, जो उनके जीवन व्यवहार में करना होता है? किस आधार पर उत्तीर्ण या अनुत्तीर्ण का ठप्पा लगाया जाता है? विद्यार्थियों से उत्तम नागरिक के रूप में जो अपेक्षाएं रखी जाती हैं, क्या उनका मूल्यांकन उनके प्रदर्शन के आधार पर होता है? उनको प्रवेश, कक्षोन्नति या नौकरी जिन गुणों के आधार पर मिलती है वह अंक है या गुणवत्ता? विद्यालय के अनुदान के लिए विद्यार्थियों द्वारा प्राप्त अंकों को ध्यान में रखा जाता है या उनमें विकसित गुणों को? इन सभी सवालों पर हमें चिन्तन करना होगा और उसका सही हल खोजना होगा।

वर्तमान शिक्षा व्यवस्था की निष्फलताओं की ओर उंगली उठाने के लिए भारत में किसी को सोचना नहीं पड़ता। यह शिक्षा पहेली है या समाधान?

शिक्षा पर नव–उदारवादी आक्रमण

★ अनिल सद्गोपाल

भारत में वैश्वीकरण की शुरुआत की औपचारिक घोषणा तो सन् 1991 में नई आर्थिक नीति की घोषणा के साथ हुई। लेकिन इसके एजेंडे का सूत्रपात 1980 के दशक के मध्य में ही हो चुका था। इसका सबूत संसद द्वारा पारित हमारी 1986 की शिक्षा नीति में मौजूद परस्पर विरोधाभासी बयानों में देखा जा सकता है। एक ओर तो नीति ने कहा कि कोठारी शिक्षा आयोग (1964–66) द्वारा अनुशंसित पड़ोसी स्कूल की अवधारणा पर आधारित समान स्कूल प्रणाली की ओर बढ़ने के लिए कारगर क़दम उठाये जायेंगे (खंड 3.2, राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986)। लेकिन दूसरी ओर, इस अवधारणा के ठीक विरुद्ध घोषित किया कि आठ साल की प्रारंभिक शिक्षा सभी बच्चों को स्कूल के ज़रिए नहीं दी जा सकेगी। संबंधित आयु समूह (यानी 6–14 वर्ष समूह) के कम–से–कम आधे बच्चे ऐसे होंगे जिन्हें स्कूल उपलब्ध नहीं कराया जाएगा, वरन् उन्हें औपचारिक स्कूल के समानांतर घटिया गुणवत्तावाली औपचारिकेतर (नॉन–फॉर्मल) धारा के ज़रिए शिक्षित किया जायेगा। (खंड 5.8–5.12, राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986)। इस समानांतर धारा में नियमित शिक्षक नहीं पढ़ायेंगे– उनकी जगह बग़ैर आर्हतावाले, प्रशिक्षण–विहीन और ठेके पर रखे गए वेतनमान–विहीन निर्देशक या शिक्षाकर्मी नियुक्त किये जायेंगे। इस तरह सरकारी स्कूल के नीचे देश के आधे बच्चों के लिए घटिया शिक्षा की एक परत बिछाने का नीतिगत फ़ैसला हुआ। इसी नीति में एक और परत सरकारी स्कूल के ऊपर ग्रामीण क्षेत्र के मुट्ठीभर अपेक्षाकृत संपन्न तबक़े के बच्चों के लिए नवोदय विद्यालयों को बिछाने की घोषणा हुई (खंड 5.14–5.15, राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986)। 1986 की शिक्षा नीति ने समान स्कूल प्रणाली की जगह बहु–परती शिक्षा व्यवस्था स्थापित करने की वैधानिक घोषणा कर दी, जिसने 1990 के दशक में वैश्विक पूंजी व बाज़ार की ताक़तों को शिक्षा के निजीकरण व बाज़ारीकरण को धरातल दी।

इस समानांतर धारा में नियमित शिक्षक नहीं पढ़ायेंगे– उनकी जगह बग़ैर आर्हतावाले, प्रशिक्षण–विहीन और ठेके पर रखे गए वेतनमान–विहीन निर्देशक या शिक्षाकर्मी नियुक्त किये जायेंगे। इस तरह सरकारी स्कूल के नीचे देश के आधे बच्चों के लिए घटिया शिक्षा की एक परत बिछाने का नीतिगत फ़ैसला हुआ।

सन् 1991 में घोषित नई आर्थिक नीति के बाद वैश्विक पूंजी व बाज़ार का प्रतिनिधित्व करनेवाली

★ सदस्य, अध्यक्षीय मंडल अखिल भारतीय शिक्षा अधिकार मंच एवं पूर्व डीन, शिक्षा संकाय, दिल्ली विश्वविद्यालय।

दो ताक़तवर संस्थाओं– अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष एवं विश्व बैंक ने भारत सरकार के सामने 'संरचनात्मक समायोजन कार्यक्रम' (स्ट्रक्चरल एडजस्टमेंट प्रोग्राम) नाम का शर्तों का पैकेज रखा। इसके तहत सरकार के लिए यह आवश्यक हो गया कि वह देश के शिक्षा व स्वास्थ्य समेत सभी समाज विकास और कल्याणकारी कार्यक्रमों पर ख़र्च घटाए। सरकार ने ये शर्तें स्वीकारीं। उल्लेखनीय है कि कोठारी शिक्षा आयोग के अनुसार पूर्व प्राथमिक स्तर से लेकर उच्च शिक्षा तक उम्दा गुणवत्ता की शिक्षा देने के लिए यह ज़रूरी है कि सन् 1986 से देश के सकल राष्ट्रीय उत्पाद का कम–से–कम 6 प्रतिशत हर वर्ष ख़र्च किया जाए। इसके बावजूद सन् 1991 की आर्थिक नीति के चलते, अगले 15 सालों में सकल राष्ट्रीय उत्पाद के प्रतिशत के रूप में शिक्षा पर किया जानेवाला ख़र्च लगातार घटाया गया। सन् 2006–07 में ख़र्च घटते–घटते बीस वर्ष पूर्व के स्तर पर आ गया, यानी सकल राष्ट्रीय उत्पाद का महज 3.5 प्रतिशत। यह इसके बावजूद हुआ है कि सर्व शिक्षा अभियान का लगभग 40 प्रतिशत बजट विश्व बैंक व अन्य अंतर्राष्ट्रीय वित्तपोषक संस्थाओं से आता है और वर्तमान सरकार विगत 5 वर्षों से प्रारंभिक शिक्षा के नाम पर 2 प्रतिशत और माध्यमिक व उच्च शिक्षा के नाम पर 1 प्रतिशत उपकर अलग से इकट्ठा कर रही है। स्पष्ट है कि जनता के सभी तबक़ों को समतामूलक गुणवत्ता की शिक्षा उपलब्ध कराने के लिए शासक वर्ग की राजनैतिक इच्छाशक्ति विगत 15 वर्षों से लगातार घटती गयी है। ऐसा करने में वैश्विक बाज़ार की ताक़तों का छिपा हुआ लेकिन असली एजेंडा भारत की विशाल सरकारी स्कूल प्रणाली (आज लगभग 12 लाख स्कूल) को ध्वस्त करना था, ताकि उसकी जगह कम व ज़्यादा फ़ीस लेनेवाले दोनों श्रेणी के निजी स्कूल ले सकें।

इसी एजेंडा का दूसरा पहलू, सरकार को शिक्षा के प्रति अपनी संवैधानिक जवाबदेही से बरी होने का मौक़ा भी देना था। लेकिन इतनी बड़ी और स्थापित व्यवस्था को ख़त्म करना आसान न था। अतः विश्व बैंक ने सन् 1993–94 से सरकारी ख़र्च में कटौती के फलस्वरूप हुई क्षति की आंशिक पूर्ति के नाम पर शिक्षा के लिए क़र्ज़ व अनुदान का कार्यक्रम शुरू किया, जिसको ज़िला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम (डी.पी.ई.पी.) के नाम से जाना जाता है। जहां पूरे भारत में उस दौर में केन्द्रीय और राज्य सरकारें मिलकर आठ साल की प्रारंभिक शिक्षा पर लगभग रु. 40,000 करोड़ सालाना ख़र्च कर रहीं थीं। वहीं विश्व बैंक ने स्वयं द्वारा प्रायोजित डी.पी.ई.पी. में मात्र रु. 500–1,000 करोड़ सालाना ख़र्च करके स्कूली शिक्षा नीति पर अपना वर्चस्व स्थापित कर लिया। विश्व बैंक और इसकी सहचर अन्तर्राष्ट्रीय वित्तपोषित संस्थाओं की इस घुसपैठ के फलस्वरूप अगले 10–15 सालों में भारत की पूरी स्कूल व्यवस्था छिन्न–भिन्न हो गई।

वैश्विक बाज़ार की ताक़तों का छिपा हुआ लेकिन असली एजेंडा भारत की विशाल सरकारी स्कूल प्रणाली (आज लगभग 12 लाख स्कूल) को ध्वस्त करना था, ताकि उसकी जगह कम व ज़्यादा फ़ीस लेनेवाले दोनों श्रेणी के निजी स्कूल ले सकें। इसी एजेंडा का दूसरा पहलू, सरकार को शिक्षा के प्रति अपनी संवैधानिक जवाबदेही से बरी होने का मौक़ा भी देना था।

वैश्विक बाज़ार की इस रणनीति के निम्नलिखित तत्त्व पहचाने जा सकते हैं–

1. शिक्षा के समग्र सामाजिक विकास के उद्देश्यों की जगह महज साक्षरता–संबंधी कौशलों ने ले ली।

2. समान स्कूल प्रणाली की जगह बहु–परती शिक्षा व्यवस्था स्थापित हुई– हर एक तबक़े के लिए एक अलग गुणवत्ता की शैक्षिक परत बिछाने का नया समाजशास्त्रीय सिद्धान्त गढ़ा गया।

3. नियमित शिक्षक की जगह आर्हता–विहीन, प्रशिक्षण–विहीन और कम वेतन प्राप्त करनेवाले ठेके पर नियुक्त पैरा–शिक्षक ने ली। इस नए कैडर को विभिन्न राज्यों में नाना प्रकार के लुभावने नाम देकर घटिया शिक्षा की हक़ीक़त छिपाने की कोशिश की गयी।

4. 1986 की शिक्षा नीति में संसद द्वारा निर्देशित न्यूनतम तीन कक्षा भवन और तीन शिक्षकोंवाले स्कूलों की जगह बहु–कक्षायी अध्यापन जैसी 'चमत्कारी' अवधारणा के तहत शिक्षकों को अकेले एक साथ पांच कक्षाओं को पढ़ाने का प्रशिक्षण दिया गया, जिस पर सैकड़ों करोड़ों रुपये ख़र्च किये गये, जो क़र्ज़ के रूप में देश की अगली पीढ़ी चुकायेगी।

5. आठ साल की प्रारंभिक शिक्षा के संवैधानिक एजेंडे की जगह पांच साल की प्राथमिक शिक्षा ने ली।

6. पाठ्यचर्या को ऐतिहासिक, राजनैतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक संदर्भों से काटकर बाज़ार के संदर्भों से जोड़ा गया (उदाहरणार्थ एम.एल.एल. की अवधारणा, भारत सरकार, 1991)।

7. शिक्षण पद्धति का निर्धारण शिक्षाशास्त्रीय सिद्धान्तों पर न होकर बढ़ते क्रम में सूचना प्रौद्योगिकी एवं उसका व्यापार करनेवाली कम्पनियों की तर्ज़ पर होने लगा।

8. शिक्षा प्रणाली में प्रणालीगत परिवर्तन करके उसका देश की ज़रूरतों के अनुरूप पुनर्निर्माण करने का उद्देश्य हाशिए पर धकेल दिया गया। इसकी जगह तदर्थ व अल्पकालीन स्कीमों और परियोजनाओं ने ले ली जिन्हें बग़ैर जांचे–परखे शुरू करने और बिना वैज्ञानिक आकलन के मनचाहे ढंग से बंद करने की खुली छूट मिल गई (उदा. डी.पी.ई.पी., शिक्षा गारंटी योजना, लोक जुंबिश, एवं सर्व शिक्षा अभियान)।

9. 'राज्य' की संवैधानिक जवाबदेही की जगह बाज़ार की ताक़तों ने ले ली।

10. सरकार और पंचायती राज संस्थानों जैसे संवैधानिक निकायों की जगह शिक्षा की ज़िम्मेदारी तेज़ी के साथ ग़ैर–सरकारी संगठनों (एन.जी.ओ.), कम्पनियों व कार्पोरेट घरानों एवं धार्मिक (साम्प्रदायिक समेत) संगठनों को सौंपने का ख़तरनाक सिलसिला शुरू हुआ। इसके लिए सार्वजनिक–निजी साझेदारी (पी.पी.पी.) की नीति अपनाई गयी, जिसके चलते सरकारी संसाधनों को विभिन्न प्रत्यक्ष व परोक्ष दोनों तरीक़ों से निजी पूंजी को सौंपने को वैधानिकता मिली।

11. शिक्षा नीति के निर्णय हमारी संसद और विधान सभाओं में न होकर देशी व अन्तर्राष्ट्रीय बाज़ार एवं विश्व बैंक के मुख्यालयों में होने लगे।

12. शिक्षा के अधिकारवाले परिप्रेक्ष्य की जगह बाज़ार में शिक्षा की क़ीमत और बच्चे के परिवार की आर्थिक हैसियतवाला परिप्रेक्ष्य

स्थापित हुआ।

यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि शिक्षा का विकास संवैधानिक एवं लोक कल्याणकारी परिप्रेक्ष्य में न करने का उच्च–स्तरीय राजनीतिक निर्णय लिया जा चुका है। शिक्षा बाज़ार में ख़रीद–फ़रोख़्त की वस्तु बन चुकी है और इसे विश्व बाज़ार संगठन के पटल पर बग़ैर किसी लोकतांत्रिक बहस के चुपचाप रखा जा चुका है। हाल में संसद में पेश किया गया विदेशी शैक्षिक संस्थान विधेयक भी विश्व बाज़ार संगठन के सामने घुटने टेकने के उपर्युक्त फ़ैसले से उपजी मज़बूरी का ही परिणाम है, न कि भारत की उच्च शिक्षा का स्तर ऊंचा करने के किसी इरादे का।

खड़ी की जायेगी यानी दो–तिहाई जनता के लिए, जिसमें प्रमुखतः दलित, आदिवासी, अति–पिछड़े, अल्पसंख्यक और विकलांग शामिल हैं और इन समुदायों में भी विशेषकर लड़कियां। इस प्रकार संविधान के समानता एवं सामाजिक न्याय के सिद्धान्त का खुलकर उल्लंघन हुआ है।

इस नई वैश्वीकृत बहु–परती शिक्षा नीति का छिपा हुआ एजेंडा देश की विशाल सरकारी स्कूल प्रणाली की गुणवत्ता गिराकर, उसको इतना जर्जर बना देना था कि उसकी आम जनता में विश्वसनीयता ही ख़त्म हो जाए। तब ग़रीब लोग भी अपने बच्चों को यहां से निकालकर निजी स्कूलों की तलाश करने

शिक्षा बाज़ार में ख़रीद–फ़रोख़्त की वस्तु बन चुकी है और इसे विश्व बाज़ार संगठन के पटल पर बग़ैर किसी लोकतांत्रिक बहस के चुपचाप रखा जा चुका है। हाल में संसद में पेश किया गया विदेशी शैक्षिक संस्थान विधेयक भी विश्व बाज़ार संगठन के सामने घुटने टेकने के उपर्युक्त फ़ैसले से उपजी मज़बूरी का ही परिणाम है, न कि भारत की उच्च शिक्षा का स्तर ऊंचा करने के किसी इरादे का।

इस नई वैश्वीकृत बहु–परती शिक्षा नीति का छिपा हुआ एजेंडा देश की विशाल सरकारी स्कूल प्रणाली की गुणवत्ता गिराकर, उसको इतना जर्जर बना देना था कि उसकी आम जनता में विश्वसनीयता ही ख़त्म हो जाए। तब ग़रीब लोग भी अपने बच्चों को यहां से निकालकर निजी स्कूलों की तलाश करने लगेंगे। इसमें विश्व बैंक और साक्षरता कार्यक्रम व नॉन–फॉर्मल केन्द्र चलानेवाली उसकी अनुयायी हज़ारों ग़ैर–सरकारी संस्थाओं (एन.जी.ओ.) को अपेक्षित सफलता मिली है।

शिक्षा नीति की जगह अन्तर्राष्ट्रीय वित्त पर आधारित स्कीमों व परियोजनाओं (बहु–चर्चित 'सर्व शिक्षा अभियान' समेत) ने ले ली है। जिनके तहत स्कूली शिक्षा के समानांतर निम्न गुणवत्तावाली कई शैक्षिक परतें बिछायी जा चुकी हैं। शर्त केवल एक है– यह वैकल्पिक व्यवस्था केवल ग़रीब जनता के लिए लगेंगे। इसमें विश्व बैंक और साक्षरता कार्यक्रम व नॉन–फॉर्मल केन्द्र चलानेवाली उसकी अनुयायी हज़ारों ग़ैर–सरकारी संस्थाओं (एन.जी.ओ.) को अपेक्षित सफलता मिली है। विगत 15–20 सालों में सरकारी स्कूलों की विश्वनीयता तेज़ी से गिरी और हर प्रकार के दुकाननुमा सस्ते निजी स्कूल, कुकुरमुत्तों

की तरह पैदा हुए जिनमें बड़ी तादाद में मान्यता–विहीन स्कूल शामिल हैं। सरकारी स्कूल प्रणाली से 1970 के दशक में शुरू करके उच्च एवं मध्यम वर्गों ने जो महापलायन शुरू किया, उस प्रक्रिया में अंग्रेज़ी माध्यम के बढ़ते हुए प्रभुत्व को रेखांकित करने की ज़रूरत है। इसके चलते सरकारी स्कूल प्रणाली की गुणवत्ता बरक़रार रखने के लिए आवश्यक राजनीतिक व सामाजिक रूप से प्रभावी आवाज़ भी लुप्त हो गयी। आज के पूर्व–प्राथमिक स्तर से लेकर उच्च व प्रोफेशनल स्तर तक की शिक्षा का बाज़ारीकरण करना सरकारी नीति बन चुकी है। नीति निर्माण की लगाम संसद व विधानसभाओं से खींचकर वैश्विक बाज़ार की ताक़तों यानी विश्व बैंक की अगुवाई में सक्रिय अन्तर्राष्ट्रीय वित्तपोषक संस्थाओं व देशी–विदेशी कार्पोरेट घरानों को सौंपी जा रही है। ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना में तो खुलकर शिक्षा के हर पहलू के लिए सार्वजनिक–निजी साझेदारी (पी.पी.पी.) लागू करने की बात है। इसके साथ–साथ शिक्षा के ज़रिए वर्ग–भेद, जाति–भेद, धार्मिक कट्टरवाद, नस्लवाद, पितृसत्ता, सामंती व ग़ैर–तार्किक सोच, पिछड़ेपन आदि विकृतियों के ख़िलाफ़ लड़ाई आगे बढ़ाने के सरोकार गौण हो रहे हैं। शिक्षा, वैश्विक बाज़ार की ताक़तों के हाथ में वर्चस्ववाद, शोषण, सांप्रदायिकता व विषमता फैलाने का हथियार बनती जा रही है।

पूरी सच्चाई तो यह है कि वैश्वीकरण का आक्रमण शिक्षा में निहित ज्ञान के चरित्र पर है ताकि ज्ञान के सृजन, संप्रेषण और वितरण पर बाज़ार की ताक़तों का नियंत्रण हो सके। तभी तो जनमानस को बाज़ार के हित में मोड़ा जा सकेगा और पूंजीवाद का ग़ुलाम बनाया जा सकेगा। इसी पृष्ठभूमि में शिक्षा अधिकार का दावा करनेवाला कानून पारित हुआ है तो इसका मक़सद फ़र्क़ कैसे हो सकता है?

दरअसल, वैश्वीकरण के शिक्षा पर हुए आक्रमण को मात्र निजीकरण व बाज़ारीकरण मान लेना अति–सरलीकरण होगा। पूरी सच्चाई तो यह है कि वैश्वीकरण का आक्रमण शिक्षा में निहित ज्ञान के चरित्र पर है ताकि ज्ञान के सृजन, संप्रेषण और वितरण पर बाज़ार की ताक़तों का नियंत्रण हो सके। तभी तो जनमानस को बाज़ार के हित में मोड़ा जा सकेगा और पूंजीवाद का ग़ुलाम बनाया जा सकेगा। इसी पृष्ठभूमि में शिक्षा अधिकार का दावा करनेवाला कानून पारित हुआ है तो इसका मक़सद फ़र्क़ कैसे हो सकता है?

व्यक्तित्व का अद्वैत विकास तथा शिक्षा में कर्मयोग

★ दयाल चन्द्र सोनी

अपने भुक्तभोगी अनुभव के आधार पर मैं सोचता हूं कि परंपरित शिक्षा का एक मौलिक दोष यह है कि उसके स्नातकों में व्यक्तित्व का ऐसा द्वन्द्व या दोहरापन पाया जाता है, जिससे न केवल वे स्वयं अपने जीवन में बेचैन पाये जाते हैं, बल्कि जिनके कारण समाज में भी बेचैनी फैलती है। आज के समाज का मुख्य रोग है, हमारे लोगों का दोहरा व्यक्तित्व, जिससे हमारा सारा युग त्रस्त हो रहा है। समाज में ऊँचे–ऊँचे पदों पर काम करनेवाले लोगों में भी यह कमज़ोरी पायी जाती है। हालत ऐसी निकम्मी है कि हमारी कथनी और करनी में आकाश–पाताल का अंतर है। फलस्वरूप हम यह पाते हैं कि देश गुलामी के चंगुल से तो मुक्त है और जनतांत्रिक शासन पद्धति स्थापित है और यद्यपि विज्ञान की आश्चर्यजनक प्रगति ने मानव–जाति के लिए सभी प्रकार की सुख–सुविधा जुटा दी है, तथापि हम लोगों की चरित्रहीनता या व्यक्तित्वहीनता के कारण या हमारे

★ स्व. श्री दयाल चन्द्र सोनी, 1941 में स्थापित विद्या भवन बुनियादी मदरसे के प्रथम प्रधानाध्यापक थे।

दोहरे व्यक्तित्व के कारण समाज में वास्तविक सुख–शांति की वृद्धि दृष्टिगोचर नहीं होती। इन वस्तुस्थिति के मूल में हमारी परंपरित शिक्षा है, जो कर्म, व्यवहार या प्रत्यक्ष आचरण की उपेक्षा करके केवल जानकारी या शब्द पर सारा का सारा बल लगा देती है। आज का विद्यार्थी बड़े उत्साह और आवेश में भरकर मज़दूरों की करुणाजनक स्थिति या पूंजीपतियों के कठोर हृदयों पर मर्मस्पर्शी कविता–पाठ कर सकता है, पर मज़दूरी क्या वस्तु है, इसका स्वाद उसे रत्तीभर भी ज्ञात नहीं है। यह कहना ग़लत न होगा कि आजकल की शिक्षा में विचार और आचार के बीच तलाक–सा रहता है। फलस्वरूप औसत शिक्षित व्यक्ति का व्यक्तित्व अस्त–व्यस्त और बिखरा–बिखरा सा रहता है। आज का शिक्षित व्यक्ति भिन्न–भिन्न दिशाओं में खींचनेवाली वृत्तियों का संघर्ष–क्षेत्र बना हुआ है। न केवल भारत में, बल्कि विदेशों में अशिक्षित लोगों की तुलना में शिक्षित व्यक्ति ही अधिक विक्षिप्त तथा उद्विग्न हैं। शिक्षितों ने ज्ञानरूपी तीव्र औषधि का सेवन तो कर लिया है, पर उसे पचाने और आत्मसात् करने के लिए जिस कर्म या संस्काररूपी पथ्य और अनुपान की आवश्यकता थी, उसकी नितांत उपेक्षा की गयी है। आज शिक्षा मनुष्यों को शांतिपूर्ण प्राकृतिक वातावरण में से निकालकर एक विकलतापूर्ण कृत्रिम अवस्था की ओर ले जाने का साधन बन रही है। हम जानते हैं कि पिछले दो महायुद्ध दुनिया के सुशिक्षित देशों की करतूत थे और आज हमें तीसरे महायुद्ध का भी यदि कोई डर है, तो वह डर दुनिया के सबसे अधिक शिक्षित देशों से ही है। इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि आधुनिक शिक्षा में कोई न कोई भंयकर दोष है, जिसको समझना और जिसे दूर करना अनिवार्य है। इस प्रकार विश्व–शांति की समस्या शिक्षा के सुधार की समस्या के साथ जुड़ी हुई है। दुनिया इस बात को जानती है कि यदि आज के युग में कोई महायुद्ध होता है तो वह किसी भी देश के लिए हार या जीत का परिणाम बनकर ही नहीं रहेगा, बल्कि उससे अखिल संसार का विनाश हो जायगा। इस दृष्टि से इस समस्या पर गहरा ध्यान दिया जाना अत्यंत आवश्यक है।

आज अधिकांश शिक्षित लोग इस अद्‌भुत भ्रांति में हैं कि जितना ऊंचा पद और जितना ऊंचा वेतन उन्हें प्राप्त होगा, उतनी ही उनके सुख में वृद्धि होगी, चाहे ऐसा किसी भी उपाय से सिद्ध हो। यहां हमारा अभिप्राय शिक्षित व्यक्तियों को वैराग्य का उपदेश देना नहीं है और न हम अपने–आपको ऐसा उपेदश करने के अधिकारी ही मानते हैं। पर वास्तविकता यह है कि ऊंचा पद, ऊंचा वेतन और अधिक संपत्ति न तो वास्तविक सुख के पोषक हैं और न उसमें बाधक ही हैं।

मानव जीवन सुख का अनुगामी है। जो परिस्थिति कष्ट और दुःख से पूर्ण है, उससे बचकर, जिसमें सुख और आनंद है, उधर मनुष्य का स्वाभाविक आकर्षण है। परंतु सुख की इस नैसर्गिक या स्वाभाविक खोज के बावजूद वास्तविक सुख की प्राप्ति बहुत कम हो पाती है। इसका मूल कारण यह है कि प्रायः मनुष्य ग़लत जगह पर सुख की तलाश करता है। आज अधिकांश शिक्षित लोग इस अद्‌भुत भ्रांति में हैं कि जितना ऊंचा पद और जितना ऊंचा वेतन उन्हें प्राप्त होगा, उतनी ही उनके सुख में वृद्धि होगी, चाहे ऐसा

किसी भी उपाय से सिद्ध हो। यहां हमारा अभिप्राय शिक्षित व्यक्तियों को वैराग्य का उपदेश देना नहीं है और न हम अपने–आपको ऐसा उपेदश करने के अधिकारी ही मानते हैं। पर वास्तविकता यह है कि ऊंचा पद, ऊंचा वेतन और अधिक संपत्ति न तो वास्तविक सुख के पोषक हैं और न उसमें बाधक ही हैं। संसार में ऐसे लोग बहुत हैं, जो सम्पन्नता के बावजूद दुःखी हैं और ऐसे लोग भी बहुत हैं, जो अपनी साधारण आर्थिक स्थिति में भी सुखी और संतुष्ट हैं। तो मानना होगा कि सुख का प्रकाश–गृह, आनन्द का स्रोत, संतोष का उद्‌गम या तृप्ति की गंगोत्री कहीं अन्यत्र नहीं है और शिक्षा का काम है कि वह मनुष्य को उससे परिचित कर दे। आज की शिक्षा सुख की तृष्णा को तो बढ़ाती है, परंतु सुख की खान का पता नहीं बताती। नतीजा यह होता है कि शिक्षित लोग ग़लत जगह पर सुख की तलाश करते हैं और जब वह वहां नहीं मिलता, तब स्वयं भी व्यग्र होते हैं और जिन लोगों से उनका सम्पर्क होता है, उन्हें भी व्यग्र बनाते हैं और इस प्रकार व्यक्ति और समाज, दोनों ही के लिए व्यग्रता और दुःख की अभिवृद्धि होती है।

पाश्चात्य शिक्षाशास्त्र में सामाजिक और व्यक्तिगत दृष्टिकोणों को लेकर एक अमर कलह व्याप्त है। कुछ लोग शिक्षा का ध्येय सामाजिक मानकर व्यक्ति को समाज के लिए तैयार करना चाहते हैं, तो दूसरे लोग शिक्षा का ध्येय व्यक्तित्व का विकास मानकर ऐसा समाज बनाना चाहते हैं, जिसमें व्यक्ति के व्यक्तित्व का महत्तम विकास हो सके। इस प्रकार यह शास्त्रार्थ निरंतर चलता रहता है और बदलते हुए समय के अनुसार कभी व्यक्तिवादी पलड़ा भारी हो जाता है, तो कभी समाजवादी। परंतु यदि गहराई से वास्तविकता को टटोला जाय, तो यह बात स्पष्ट हो जायेगी कि शिक्षाशास्त्र की मुख्य गुत्थी यह नहीं है कि समाज अधिक महत्त्वपूर्ण है या व्यक्ति, बल्कि उसकी मुख्य पहेली यह है कि मनुष्य के सुख का वास्तविक स्रोत एवं उद्‌गम कहां है और कैसा है। अर्थात् मनुष्य के वास्तविक एवं स्थायी सुख का साधन सभी लोगों के पास विद्यमान है या उनसे दूर है? यह साधन हवा और पानी की तरह सभी मनुष्यों के लिए सहज रूप से उपलब्ध है अथवा उसकी मात्रा बहुत सीमित होने से वह सभी लोगों के लिए पर्याप्त नहीं है और इस प्रकार क्या यह अनिवार्य है कि जब तक एक व्यक्ति दूसरे का सुख नहीं छीने, तब तक उसे सुख मिल ही नहीं सकता? आज तो संसार की हालत और लोगों की मान्यता ऐसी है कि एक का दुःख ही दूसरे का सुख और एक का सुख ही दूसरे का दुःख है। पर वास्तविकता यह है कि सुख का रहस्य हमारा अंतःकरण स्वयं है और किसी भी परिस्थिति में हम सुखी रह सकते हैं, यदि हम अपने अन्तःकरण से अपना अद्वैत रख सकें। हमारा अंतःकरण हममें पाया जानेवाला वह दिव्य तत्त्व है, जिसे हम धर्म का नाम देते हैं अथवा जिसे हम सत्य का नाम देते हैं; क्योंकि अन्तःकरण ही हमारा हमेशा टिकनेवाला साथी है, जिसके सहारे हम अपना जीवन–यापन करते हैं। परमात्मा या प्रकृति ने जिस प्रकार हवा और पानी सबके लिए बनाये हैं, उसी प्रकार अंतःकरण भी सभी लोगों को स्पर्श किये हुए है। मनुष्य चाहे धनी हो चाहे निर्धन, चाहे मंत्री हो चाहे चपरासी, चाहे भव्य महलों में रहता हो चाहे झोपड़ी में, चाहे रेशम के बहुमूल्य वस्त्र धारण करे चाहे टाट लपेटकर काम चलाये, चाहे पकवान खाये चाहे रूखी रोटी, चाहे हवाई जहाज में बैठकर उड़े और चाहे लकड़ी के सहारे पैदल ही चले, चाहे अन्य लोगों से उसकी मित्रता हो चाहे शत्रुता, जिसका अपने अंतःकरण से कलह नहीं और सुलह है, जिसके व्यक्तित्व में द्वन्द्व या दोहरापन नहीं है। जो व्यक्ति ऐसा है, उसी के हृदय में संतोष तथा शांति का निवास है। ऐसा ही

मनुष्य समाज को चाहिए, क्योंकि ऐसा व्यक्ति ही समाज का सुख बढ़ा सकता है। अतः शिक्षाशास्त्र के सामने मुख्य प्रश्न व्यक्ति या समाज में से एक पर अधिक बल देने का नहीं है, बल्कि शिक्षाशास्त्र का मुख्य प्रश्न मनुष्य को उनके अंतःकरण से भली प्रकार परिचित करने का है, ताकि वह उसे पहचानने में भूल न करे और उससे न केवल स्वयं सुख–शांति प्राप्त करे, बल्कि समाज में भी सुख–शांति की वृद्धि करे। इसी प्रश्न को हम दूसरे शब्दों में व्यक्तित्व में अद्वैत की स्थापना का प्रश्न कह सकते हैं।

ज्ञान, कर्म तथा भावना का समवाय

अब यदि हम यह बात समझ चुके हैं कि जब व्यक्ति अपने अंतःकरण के साथ अद्वैत स्थापित कर लेता है, तभी वह स्वयं सुखी होता है और समाज को भी सुख पहुंचा सकता है, तो हमारे समाने शिक्षा का प्रमुख प्रश्न यह बन जाता है कि व्यक्ति अपने अन्तःकरण के साथ अद्वैत किस प्रकार स्थापित कर सकता है। अंतःकरण के साथ व्यक्ति का अद्वैत और व्यक्ति की मानसिक शांति इस बात पर आश्रित है कि उसके ज्ञान और उसके आचरण में कोई अंतर या विभेद न हो। मन, वाणी और कर्म की एकता जहां होती है, वहां व्यक्ति अपने अंतःकरण के साथ अद्वैत स्थापित कर लेता है और इसमें ही उसे सच्चा स्थायी सुख या शान्ति प्राप्त होती है। फिर जहां मन, वाणी और कर्म का सामंजस्य होता है, वहां केवल ज्ञान और आचरण के बीच ही समवाय नहीं होता, वहां भावना या हृदयपक्ष का समवाय भी अपने आप ही हो जाता है। भावना या हृदय पक्ष ही वह बल या वह पुल है, जो मनुष्य को यह शक्ति प्रदान करता है कि वह अपने ज्ञान के अनुसार ही अपने कर्म को ढाल सके या दोनों को आपस में जोड़ सके। अतः यह निष्कर्ष निकलता है कि जो शिक्षा विद्यार्थियों के व्यक्तित्व में अद्वैत की स्थापना करना चाहती हो, उसे चाहिए कि विद्यार्थी के ज्ञान और कर्म के बीच समवाय स्थापित करे।

ज्ञान और कर्म के समवाय की शिक्षात्मक वांछनीयता पर यहां जो कुछ भी कहा गया हो, शंकराचार्य जैसे महान् दार्शनिक ने अपने दर्शन में यह प्रतिपादित किया है कि सच्चे सुख या आत्मतुष्टि का कारण तो ज्ञान है, न कि कर्म, और ज्ञान का कर्म से मेल असंभव है। फिर हमारी उपुर्यक्त बात कैसे उचित हो सकती है कि ज्ञान का कर्म में समवाय होना चाहिए और वास्तविक सुख और शांति इसी समवाय से प्राप्त हो सकती है?

मन, वाणी और कर्म की एकता जहां होती है, वहां व्यक्ति अपने अंतःकरण के साथ अद्वैत स्थापित कर लेता है और इसमें ही उसे सच्चा स्थायी सुख या शान्ति प्राप्त होती है। फिर जहां मन, वाणी और कर्म का सामंजस्य होता है, वहां केवल ज्ञान और आचरण के बीच ही समवाय नहीं होता, वहां भावना या हृदयपक्ष का समवाय भी अपने आप ही हो जाता है।

इसका समाधान यह है कि ज्ञान किसी जानकारी का नाम नहीं है। जो ज्ञान हमें शांति देता है, वह ज्ञान प्रत्यक्ष अनुभव से उत्पन्न होनेवाला साक्षात्कारी ज्ञान है, न कि पुस्तकों का वाचन। परंपरित शिक्षा को हम ग्रन्थोपासना कह सकते है, परंतु ज्ञान की अनुभूति नहीं मान सकते। ज्ञान की अनुभूति तो कर्म से ही

उत्पन्न होती है, बशर्ते कि हम अपने मन, वचन और कर्म का एकीकरण साधते रहें। इस विषय में मिसाल प्रसिद्ध है कि पुस्तक में 'आम' शब्द का पाठ करने से ही आम का ज्ञान नहीं होता। आम का ज्ञान तो आम खाने के कर्मजनित अनुभव से ही होता है। अध्यात्म में ज्ञान का मतलब इस अनुभूति से है कि निखिल चराचर में ईश्वर की एक ही अद्वितीय शक्ति काम कर रही है। यह अनुभूति ही इस बात का सामर्थ्य रखती है कि हमारे चित्त को उन चिंताओं से मुक्त करे, जो अपने आपको कर्ता मानने से हमें घेरे रहती हैं। अतः यह अनुभूति ही स्थायी सुख और शान्ति की जननी है और शंकराचार्य का यह कहना सच है कि ज्ञान (अर्थात् यह अनुभूति कि चराचर विश्व में ईश्वर की एक ही अद्वितीय शक्ति से सब कुछ हो रहा है) और कर्म (अर्थात् यह भ्रांति कि अलग–अलग लोग अपने–अपने कर्म को अपनी–अपनी इच्छा से अलग–अलग स्वयं कर रहे हैं), ये दोनों बातें एक साथ नहीं निभ सकतीं। इसी दृष्टि से ज्ञान और कर्म का संयोग असंभव माना गया है, जिसका मतलब यह है कि जिसे ज्ञान की प्राप्ति हो जाती है, उसके कर्त्तव्य के भ्रम का लोप हो जाता है और वह ज्ञानी सब कुछ करते हुए भी कुछ नहीं करता। पर इसका मतलब यह नहीं हो सकता कि ज्ञानी व्यक्ति ग़ैरज़िम्मेदार या आलसी और निकम्मा हो जाता है या सम्मुख उपस्थित हुए कर्त्तव्य से विमुख हो जाता है। ज्ञानी व्यक्ति जब सम्मुख आये हुए कर्त्तव्य से विमुख होता है, तो वह ज्ञानी नहीं रहता, क्योंकि सम्मुख आये हुए कर्त्तव्य कर्म से विमुख होना स्वयं एक ऐसा कर्म है, जिसके लिए व्यक्ति अपने को ज़िम्मेदार माने बिना न रहेगा। उसकी यह कर्त्तव्य विमुखता ही एक अहंजनित कर्म हो जाएगा। यही कारण है कि स्वयं शंकराचार्य ने अपने को संन्यासी और कर्मज्ञानसमवाय का विरोधी मानकर भी आजीवन बहुत ही निष्ठा और लगन के साथ देशोद्धार का सहज रूप से प्राप्त काम किया। कहा भी गया है कि जब तक हम सशरीर हैं, तब तक कर्म का स्वरूप से त्याग होना तो असंभव है, चाहे हम ज्ञानी हों चाहे अज्ञानी। ज्ञानोपलब्धि से जो वस्तु छूट जाती है, वह आत्मकर्तृत्व की भ्रांति है, न कि जीवन या शरीर के सहज कर्म। अतः यह सिद्ध होता है कि जिस समय जैसा हमारा हार्दिक या आंतरिक ज्ञान हो, उस समय हमें वैसा ही आचरण करना चाहिए। इस प्रकार अंतःकरण का हमारे व्यक्तित्व के साथ तादात्म्य होता है और हमारे व्यक्तित्व में एक अद्वैत का विकास होकर हमें वास्तविक सुख या शन्ति की उपलब्धि होती हैं। यही कर्म के भीतर अकर्म है और यही सच्चा संन्यास या नैष्कर्म्य–सिद्धि है। जिस तरह जवान मनुष्य जवानी का आत्मानुभव करता है, चाहे वह जवानी का नाम

ज्ञान किसी जानकारी का नाम नहीं है। जो ज्ञान हमें शांति देता है, वह ज्ञान प्रत्यक्ष अनुभव से उत्पन्न होनेवाला साक्षात्कारी ज्ञान है, न कि पुस्तकों का वाचन। परंपरित शिक्षा को हम ग्रन्थोपासना कह सकते हैं, परंतु ज्ञान की अनुभूति नहीं मान सकते। ज्ञान की अनुभूति तो कर्म से ही उत्पन्न होती है, बशर्ते कि हम अपने मन, वचन और कर्म का एकीकरण साधते रहें। इस विषय में मिसाल प्रसिद्ध है कि पुस्तक में 'आम' शब्द का पाठ करने से ही आम का ज्ञान नहीं होता। आम का ज्ञान तो आम खाने के कर्मजनित अनुभव से ही होता है।

न जाने, उसी प्रकार ज्ञानी ज्ञान का अनुभव करता है, चाहे वह ज्ञान का नाम न जाने। जिस तरह शून्य से गुणित होने पर कोई भी राशि शून्य में बलकर रह जाती है, उसी प्रकार जब ज्ञान से किसी भी कर्म का संयोग होता है, तो वह कर्म भी ज्ञान बदलकर रह जाता है और उसकी कर्मता नष्ट हो जाती है। शंकाराचार्य ने ज्ञान और कर्म का संयोग इसी दृष्टि से असंभव माना है। अतः बुनियादी शिक्षा में यदि ज्ञान और कर्म के संयोग की सिफ़ारिश की जाय, तो उसके विरुद्ध किसी को शंकराचार्य के दर्शन की आपत्ति नहीं उठानी चाहिए। शंकराचार्य के दर्शन का यह तात्पर्य नहीं है कि जो ज्ञानी हो, वह निष्क्रिय और निठल्ला रहता है। शंकराचार्य का कहना केवल यही है कि ज्ञान का अर्थ कर्त्तव्य–भावना का लोप और इस बात का अनुभव है कि जो कुछ हमारे द्वारा हो रहा है या किसी के द्वारा भी हो रहा है, उसका वास्तविक कर्त्तव्य ईश्वर के सकाश से प्रकृति का ही है।

पर यहां शंका उठेगी कि यदि आध्यात्मिक ज्ञान की प्राप्ति होने से पूर्व ही प्रत्येक व्यक्ति से यह कहा जाय कि तुम अपने ज्ञान (जैसा भी कच्चा, अधूरा, ग़लत या सही वह ज्ञान है) के अनुसार ही आचरण करो, तो ऐसे व्यक्ति का कर्म तो अनुचित होगा और इस तरह न तो कार्य अच्छा होगा और न उससे समाज या व्यक्ति को ही कोई लाभ होगा। ऐसे काम को हम ज्ञान और कर्म का संयोग भी नहीं मान सकते, क्योंकि ऐसे व्यक्ति को ज्ञान तो अभी हुआ ही नहीं।

इसका जवाब यह है कि ऐसी दशा में भी कर्म करना तो आवश्यक है, क्योंकि कच्चा या पक्का, पूरा या अधूरा, सही या ग़लत, जो ज्ञान कर्म की कसौटी पर कसा जाता है, उसी का परीक्षण संभव है। कर्ता ज्ञानी है या नहीं, इसका पता तब तक किसी को नहीं चल सकता, जब तक कि कर्ता अपने ज्ञान को अपने मन में दबाये रहता है और उस ज्ञान को कर्म में रूपान्तरित नहीं करता। अतः जो व्यक्ति मिथ्या ज्ञान से मुक्त होकर सच्चे ज्ञान को प्राप्त करना चाहता है, उसके लिए एकमात्र मार्ग यही है कि वह अपनी ज्ञानात्मक मान्यताओं को प्रत्यक्ष कर्म में रूपान्तरित करके उनका परिणाम देखे। ऐसा करने से ही व्यक्ति अपने ज्ञान तथा अपने कर्म की शुद्धि कर सकता है और यही उसकी शिक्षा है। अतः जैसा कि गीता में भी कहा है, जो व्यक्ति योग का आरोहण करना चाहता है, उसका साधन केवल ज्ञान या शब्द नहीं है, बल्कि कर्म ही उसके लिए साधन और सहारा है।

अतः जो व्यक्ति मिथ्या ज्ञान से मुक्त होकर सच्चे ज्ञान को प्राप्त करना चाहता है, उसके लिए एकमात्र मार्ग यही है कि वह अपनी ज्ञानात्मक मान्यताओं को प्रत्यक्ष कर्म में रूपान्तरित करके उनका परिणाम देखे। ऐसा करने से ही व्यक्ति अपने ज्ञान तथा अपने कर्म की शुद्धि कर सकता है और यही उसकी शिक्षा है।

व्यक्ति और समाज के हितों में कोई भी द्वन्द्व नहीं है, बल्कि ये दोनों ही एक–दूसरे के पूरक हैं, इसी सिद्धान्त को प्राचीन भारत में कर्मयोग का सिद्धान्त कहा गया है। गीताशास्त्र व्यक्ति और समाज के समन्वय का, दोनों के पूर्ण सामंजस्य का शास्त्र है और इस दृष्टि से वह शिक्षाशास्त्रियों के लिए अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। सांख्य या संन्यास का मार्ग, जिसे हम ज्ञान–मार्ग भी कह सकते हैं, विशुद्ध

व्यक्तिवादी मार्ग है। इसका सारा लक्ष्य समाज की उपेक्षा करके व्यक्तिगत मोक्ष की प्राप्ति है। संन्यासी से इस संसार का कोई भला सहज रूप से यदि हो जाय, तो संन्यासी को इसमें आपत्ति नहीं है और न इससे उसे कोई ममत्व है। संन्यासी का अपना लक्ष्य तो केवल व्यक्तिगत मुक्ति ही होता है। कर्मयोग इसे प्रोत्साहन नहीं देता। कर्मयोग का सिद्धान्त है कि श्रेष्ठ मनुष्यों को, अर्थात् ज्ञानियों को लोक–संग्रहरूपी यज्ञ में तत्परता से भाग लेकर समाज के सामने उत्तम उदाहरण रखना चाहिए और ऐसा करने से न केवल यह सृष्टि–चक्र उत्तम रूप से चलेगा, बल्कि व्यक्ति की भी शुद्धि होगी, उसका भी विकास होगा और वह मोक्ष का अधिकारी भी बनेगा। इस प्रकार व्यक्तित्व का एकीकरण अर्थात् ज्ञान और कर्म का समन्वय ही गीता का कर्मयोग है। इसी कर्मयोग को शिक्षा के व्यक्तिवादी और समाजवादी ध्येयों का समन्वय या विलय भी कह सकते हैं। तनिक गहराई से देखने पर विदित होता है कि ज्ञान और कर्म का समवाय ही मानव जीवन की शाश्वत समस्या है, जिसके समाधान के लिए बड़े–बड़े दर्शनशास्त्रों और आध्यात्मिक ग्रन्थों की रचना होती है।

सामान्यजन और गांधीजी अथवा महापुरुषों और गांधीजी के बीच मुख्य अंतर यह था कि गांधीजी के विचार और गांधीजी के आचार में कोई अंतर, भेद या दूरी नहीं रह गयी थी। गांधीजी की आत्मकथा पढ़ने से एक बात जो सबसे ऊपर तैरकर स्पष्ट रूप से आ जाती है, वह यह है कि बाल्यकाल से ही गांधीजी ने जो सोचा, वही किया। अधिकांश लोगों में यह कमज़ोरी पायी जाती है कि वे सोचते तो बहुत कुछ हैं, बहुत से संकल्प भी करते हैं, पर उनका विचार और उनका संकल्प प्रायः यों का यों धरा रह जाता है और वे लोग उस पर अमल नहीं कर पाते। न केवल राजनीतिक योजनाओं और आन्दोलनों में, बल्कि भोजन या स्वास्थ्यसंबंधी विचारों में या कपड़ा पहनने के बारे में या ब्रह्मचर्य के बारे में गांधीजी ने जब जैसा सोचा, वैसा उन्होंने अविलंब ही प्रत्यक्ष कर भी डाला। और उन्होंने जब जो कुछ किया, उसे स्थायी और पक्के तौर पर किया। उनके साथ ऐसा नहीं हुआ कि उन्होंने किसी अच्छी बात को अपनाकर बाद में किसी दुर्बलता के कारण छोड़ दिया हो। ऐसी ज़बर्दस्त संकल्प–शक्ति का दूसरा महापुरुष आसानी से नहीं मिलता। गांधीजी के जीवन–चरित्र को पढ़ने से अथवा उनके लेखों का अध्ययन करने से यह स्पष्ट होता है कि वे एक महान् नेता या आन्दोलनकर्ता ही नहीं थे, बल्कि महान् ज्ञानी थे और ठोस आध्यात्मिक भूमिका पर खड़े थे। इसका कारण यह नहीं था कि गांधीजी ने दर्शनशास्त्रों का बहुत गहरा और व्यापक पठन किया था। ऐसे अज्ञानी बहुत हैं, जिनको बड़ी–बड़ी पदवियां या उपाधियां प्राप्त हैं। इन लोगों की तुलना गांधीजी से नहीं का जा सकती, क्योंकि गांधीजी का ज्ञान और कर्म एक था। निरंतर ज्ञान और कर्म की एकता का अभ्यास करते–करते गांधीजी की सहज बुद्धि इतनी जाग्रत हो गयी थी कि कई बातें उनको तर्क से नहीं, बल्कि एक सहज–आन्तरिक–दर्शन (अथवा इंट्यूइशन) से सूझती थीं और वे बातें उन बातों की तुलना में कहीं अधिक उपयोगी और सही होती थीं, जो कि दूसरे नेता अपने तर्क या अपनी बुद्धि से सोच–सोचकर बताते थे। मेरा अनुमान है कि यह शक्ति इस बात का ही परिणाम थी कि गांधीजी ने निरंतर मन, वाणी और कर्म की एकता का अभ्यास किया था। गांधीजी का यही अभ्यास उनकी शक्ति, उनकी महानता, उनके प्रभाव और उनकी सफलता का रहस्य था।

क्रमशः अगले अंक में...

साभार– 'बुनियादी शिक्षा क्या और कैसे?' पुस्तक से।

जो नित्य नई रहती है वही नई तालीम

★ गोविंद रावल

एक मित्र ने मुझसे पूछा, भला नई तालीम की बात करते हो, किन्तु यह तालीम तो गांधीजी ने सन् 1937 में दी थी, उसे बीते 70 साल हो गए, तो भला अब तो उसे 'पुरानी तालीम' ही कहना चाहिए। फिर भी आप लोग 'नई तालीम' ऐसा शब्द प्रयोग करते हैं? मैंने कहा– मेरे दोस्त, यही तो नई तालीम का राज़ है। यह तालीम आज भी 'नई तालीम' ही है और आगे भी नई तालीम ही रहेगी। उसने पूछा भला, ऐसा उसका क्या राज़ है, मुझे बताइए तो सही। तब मैंने कहा, जो नित्य नई रहती है– वह है नई तालीम। नित्य नूतन, नई तालीम। नई तालीम का काम है– जो नये–नये प्रश्न खड़े हों उनका वह हल बताए। वही नई तालीम।

गांधीजी ने स्वयं कहा था कि– मैंने दुनिया को दो–चार चीज़ें दी हैं, किन्तु उन सब में यदि मेरी कोई लास्ट बेस्ट ऐण्ड चीज़ है, तो वह है 'नई तालीम'। गांधीजी बनिया थे। वे हर एक शब्द को माप–तौलकर बोलते थे। यदि स्वयं वे कहते हों, कि नई तालीम मेरी सर्वोत्तम देन है, तो हमे भी उस पर ग़ौर से सोचना चाहिए। उन्होंने तो यहां तक कहा था कि यदि भारत इसका सोच–समझकर प्रयोग करेगा तो उसकी शक्ल ही बदल जायेगी। उन्होंने यहां तक कहा था कि यदि भारत को देखकर दुनिया अमल करेगी तो दुनिया की भी शक्ल बदल जायेगी। तो गांधीजी की एक अनमोल देन है, जो हमें प्राप्त हुई है।

शिक्षा का असली काम है– बन्धनों से मुक्त कराना। सा विद्या या विमुक्तये है। आज सारी मानव जाति कई प्रकार के बंधनों से बंधी हुई है। सबसे पहले जाति बंधन है। अपने काम, क्रोध, विकार जो हमें नचाते हैं, कुदाते हैं, मारते हैं, पीटते हैं, हंसाते हैं, रुलाते हैं। मिथ्याभिमान में डूबोकर मराते हैं– व्यैक्तिक रूप से तो सही किन्तु सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, धार्मिक सभी रूपों में, वे एक उन्माद जगाते हैं। हमारा है, वही श्रेष्ठ है, उसे सबको स्वीकार करना चाहिए। मम सत्यम् ही सत्य है। उसे जो मान्य नहीं करेगा, तो उसे तबाह कर देंगे।

गांधीजी ने स्वयं कहा था कि– मैंने दुनिया को दो–चार चीज़ें दी हैं, किन्तु उन सब में यदि मेरी कोई लास्ट ऐण्ड बेस्ट चीज़ है, तो वह है 'नई तालीम'। गांधीजी बनिया थे। वे हर एक शब्द को माप–तौलकर बोलते थे। यदि स्वयं वे कहते हों, कि नई तालीम मेरी सर्वोत्तम देन है, तो हमे भी उस पर ग़ौर से सोचना चाहिए।

★ 'विश्वमंगलम्', अनेरा, गुजरात के संस्थापक एवं प्रसिद्ध गांधीवादी विचारक।

हमने जो जीवनशैली बनाई है, उसे ही सबको स्वीकारनी होगी वरना मौत के घाट उतारेंगे। ऐसी मानसिकता आधुनिक शिक्षा की पैदाइश है।

गांधीजी ने उसी के सामने बग़ावत की– सत्याग्रह किया। बाग में सभी एक ही रंग के और एक ही क़िस्म के फूल होने चाहिए, यह क्या ठीक है। 'बाग़' तो वही कहा जाता है, जिसमें क़िस्म क़िस्म के फूल होते हैं। हर एक का रूप, रंग, सुगंध, शान–शौकत निराली। हर एक का अपना व्यक्तित्व है, अपनी विभूति है। हर एक को एक ही ढांचे में न ढालें। अपनी रुचि, वृत्ति, रस, क्षमता के मुताबिक़ खिलने दो।

करनेवाली मनुष्य की जीवनशैली नहीं होनी चाहिए।

हम देखते हैं कि आधुनिक शिक्षा के फलस्वरूप व्यक्ति समाज और प्रकृति का शोषण करता है, उन सबको तबाह करता है। शिक्षा कुछ मुठ्ठीभर लोगों की सुख–सुविधा के लिए काम करती है, यह आधुनिक शिक्षा की परिणति है।

गांधीजी इसको पलट देना चाहते थे। यह काम नई शिक्षा– नई तालीम ही कर सकती है, जो नई चेतना का निर्माण करके एक नया मनुष्य खड़ा कर सकती है। वह नया मनुष्य ही नए समाज का निर्माण करेगा, जिसमें सर्व का उदय होगा, ऐसा एक अभिनव क्रान्तिदर्शन यह नई तालीम है। वर्तमान

हम देखते हैं कि आधुनिक शिक्षा के फलस्वरूप व्यक्ति समाज और प्रकृति का शोषण करता है, उन सबको तबाह करता है। शिक्षा कुछ मुठ्ठीभर लोगों की सुख–सुविधा के लिए काम करती है, यह आधुनिक शिक्षा की परिणति है।
गांधीजी इसको पलट देना चाहते थे। यह काम नई शिक्षा– नई तालीम ही कर सकती है,

हर एक में कोई न कोई सृजता होती है। शिक्षा का उद्देश्य है, यह अवसर हर एक को मुहैया कराना चाहिए। तो दूसरी ओर, व्यक्ति जंगल में अकेला नहीं रहता, वह एक सामाजिक प्राणी भी है। तो समाज के प्रति भी उसका कोई न कोई दायित्व है, उसको एक जवाबदेह ज़िम्मेदार नागरिक भी होना होगा।

समाज को नुक़सान होता हो, ऐसा उनका जीवन, व्यवसाय, व्यापार की गतिविधि नहीं होनी चाहिए, इसका अहसास भी शिक्षा के ज़रिए खड़ा करना होगा। मुनष्य प्रकृति की कृति है, प्रकृति उसकी माता है और माता को मारनेवाली, उसका शोषण की जो समस्याएं हैं, उनको समाप्त करने के लिए ही नई तालीम का जन्म हुआ है। हम उसमें छिपे गभींर तथ्यों को समझें और उसे कार्यान्वित करने के महायज्ञ में अपनी आहुति दें।

वर्तमान युग के क्या प्रश्न हैं? ग़रीबी, बेरोज़गारी, प्रदूषण, आतंकवाद, अनारोग्य, असमानता इत्यादि... क्या आधुनिक शिक्षा के पास इसका जवाब है? आधुनिक शिक्षा 'हैव' (साधन सम्पन्न) और 'हैव नॉट' (साधनहीन) के दो वर्ग खड़े करके, सामाजिक और आर्थिक असमानता पैदा करके ग़रीबी और बेरोज़गारी को और बढ़ावा देती है। इसी के कोख से आतंकवाद जन्म लेता है।

हां, आधुनिक युग में ज्ञान का विस्फोट हुआ है। विज्ञान और टेक्नोलॉजी के ज़रिये सारी चीज़ों के उत्पादन के ढेर लगे हैं। लेकिन आम आदमी के पास रोज़गार न होने से, क्रय शक्ति के अभाव में वह उनको ख़रीद नहीं पाता। ऐसी स्थिति में वह भुखमरी और कुपोषण से मरता है।

आधुनिक शिक्षा उसको काम नहीं देती, काम करने की तालीम भी नहीं देती, तो वह शिक्षित बेकार भला आतंकवादी क्यों न बनेगा? आधुनिक शिक्षा देश को जवाबदेह नागरिक–(रेस्पॉसिबल सिटीज़न) नहीं दे पाती। आधुनिक शिक्षा सिर्फ़ क्लास के लिए है, मास (सम्पूर्ण) के लिए नहीं। इस शिक्षा का ढंग ही ऐसा है, जो लाखों रुपये फीस दे सके, उसको पढाएं, पब्लिक को नहीं। फिर भी यह कैसी विडंबना है कि ऐसी स्कूलें 'पब्लिक स्कूल' कही जाती है, जिनमें पब्लिक के प्रवेश के लिए तो उनके दरवाज़े हर दम बंद ही रहते हैं।

नई तालीम सिर्फ़ शालेय शिक्षा नहीं, वह तो गर्भाधान से आरंभ होकर मृत्युपर्यंत चलनेवाली प्रक्रिया है। यह जीवन की शिक्षा है, जो जीवनपर्यन्त (आजीवन) चलती है। जो जीवन की हर एक प्रक्रिया को वैज्ञानिक तरीक़े से, जीवन के पोषक स्वरूप में और कलात्मक रूप से काम को कैसे करना है, यह सिखाती है। नई तालीम का असली मक़सद है– एक नया समाज, सर्वोदयी समाज का निर्माण। यह कोई वर्ग विशेष, जाति विशेष, धर्म विशेष, देश विशेष के लिए काम करना नहीं चाहती। वह तो पूरी मानवजाति और प्रकृति का सर्वदेशीय विकास –उदय करने का लक्ष्य रखती है। उसका माध्यम न सिर्फ़ उद्योग है उसका माध्यम तो पूरा जीवन है, सिर्फ़ व्यक्ति का ही नहीं पूरी समष्टि का उदय करना चाहती है।

आधुनिक शिक्षा का लक्ष्य है 'पैसे कैसे कमाना और बनाना?' पैसा बनाने में चाहे व्यक्ति और समाज का शोषण होता हो, प्रकृति का प्रदूषण होता हो, भ्रष्टाचार पनपता हो, ग़रीबी और बेरोज़गारी बढ़ती हो, अनारोग्य बढ़ता हो, हिंसा बढ़ती हो, अशांति फैलती हो, असलामति पैदा होती हो और कुछ भी होता रहे फिर भी हमें पैसा मिलना चाहिए।

क्या; ऐसी शिक्षा पैसा कमानेवालों को भी चैन की नींद सोने देगी? पैसों का भस्मासुर उनको ही भस्म नहीं कर देगा? ऐसी यह आततायी शिक्षा किसका भला करेगी। इसलिए तो दुनिया के महान् शिक्षाशास्त्री भी मानवजाति को जड़ मूल से नष्ट करनेवाली ऐसी शिक्षा का विरोध कर रहे हैं। दिमाग़ खिले और हृदय शून्य हो, तो समझो कि उसका अब विनाश होनेवाला है। रशिया और चीन में साम्यवाद ने तबाही खड़ी की, इससे ही उसका विनाश हुआ। वे लोग, मार्क्स के उस वचन को ही भूल गए कि हर एक चीज़ के विकास में ही उसके विनाश के बीज अंतर्निहित होते हैं। आज पूंजीवाद का बोलबाला है। आज की शिक्षा भी उसकी पैदाइश है, किन्तु अब उनके दिन भर चुके हैं।

स्थायी विकास– 'सस्टेनेबल डेवलपमेन्ट' और संतुलित विकास के बिना न प्रकृति, न समाज और न व्यक्ति अच्छी तरह खिल (प्रगति) सकता है। गांधी की नई तालीम, चाहे आज की चकाचौंध में अंधे हुए लोगों को न दिखाई दे, किन्तु युग का तक़ाज़ा है कि सर्व के उदय के बिना, वर्ग विशेष चाहे कितना भी आसमान में उड़े, वह सुख की, चैन की नींद नहीं सो सकता है।

विश्व कवि श्री उमा शंकर ने गाया है कि जब भूखे लोगों की जठराग्नि प्रदीप्त होगी तब खंडेर की कणि भी भस्म हो जायेगी।

भूख्या जनोनो जठराग्नि जागशे।
खंडेरनी भस्मकणि न लाधशे।

लीक से हटकर

युवाओं पर शक या भरोसा

★ के. आर. शर्मा

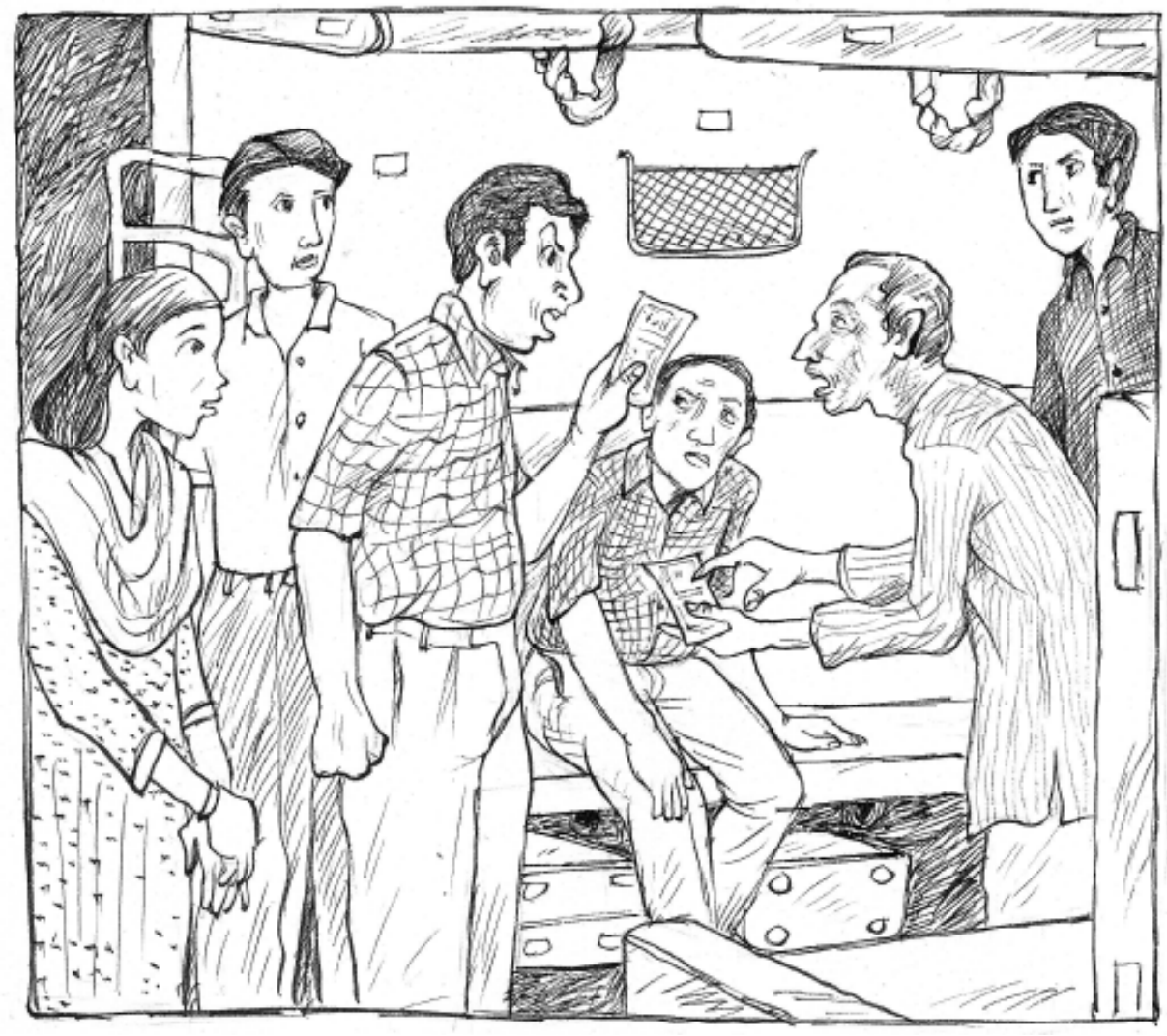

★ जशोदा ट्रस्ट, धरमपुर ज़िला वलसाड (गुजरात) में कार्यरत।

रात को तक़रीबन सवा दस बजे कल्याण (मुंबई) से रेल के कोच में जैसे ही मैं चढ़ा, तो थोड़ा तनाव पैदा हो गया। तनाव होने की वज़ह यह थी कि कोच में अधिकांश युवक–युवतियां थे। जैसे–तैसे मैं रेल में चढ़कर अपनी सीट तक पहुंच गया। मगर, जब सीट पर पहुंचा तो वहां साइड वाली सीट पर चार–पांच युवक–युवतियां ठसमठस होकर जमे हुए थे। और उनके बीच हंसी–मज़ाक का माहौल बना हुआ था। वे अपनी चर्चाओं में इतने मशगूल थे कि मेरी बात को उन्होंने सुना ही नहीं। मुझे एक बारगी तो लगा कि कहीं ये सुनकर भी, अनसुना तो नहीं कर रहें। हिम्मत जुटाकर, मगर थोड़ा अकड़कर और नाराज़गी भरे लहजे में बैग रखते हुए, मैंने उनसे कहा– "ये तो मेरी सीट है। आप यहां से उठिए।" मेरे कहने पर उनमें से एक ने कहा– "ऑफकोर्स ये आपकी ही सीट है।" यह कहते हुए उसके व्यवहार में विनम्रता झलक रही थी। वे चारों वहां से उठकर कोच के गलियारे में खड़े हो गए।

रेल रवाना हो गई। कई सारे युवक जिनमें युवतियां भी थीं, अब भी एक–एक सीट पर ठसमठस होकर जमे हुए थे। उनकी चर्चाओं में और बीच–बीच में हंसी की तीव्रता अपने चरम पर होती, मगर फिर से वे संयमित हो जाते। हालांकि उन्होंने अब तक अपने साथ की युवतियों के साथ, किसी ग़ैर के साथ ऐसी कोई हरकत नहीं की, जिससे कि उन पर कोई इल्ज़ाम लगाया जा सके। वे सब के सब अपनी ही मस्ती में डूबे हुए थे। अगले स्टेशन पर जब रेल रुकी तो एक अधेड़ उम्र का हट्टा–कट्टा सा व्यक्ति इसी कोच में चढ़ा और अपनी सीट खोजने लगा। हमने देखा कि अचानक ही वह जोर–जोर से अंग्रेज़ी में किसी से लड़ाई कर रहा है। दरअसल, वह जिससे भिड़ रहा था, वह एक वयोवृद्ध था। वयोवृद्ध व्यक्ति कहे जा रहे थे कि मेरा टिकट देख लो। ये मेरी ही सीट है। इस पर वह व्यक्ति फिर से झल्लाने लगा। वयोवृद्ध व्यक्ति कुछ कहने की कोशिश कर रहे थे, मगर उनकी बात को वह सुनने को तैयार ही नहीं था। वृद्ध सहमकर खड़े हो गए। अब तक जो युवा चर्चाओं में खोए हुए थे, उनका ध्यान उन वृद्ध और अधेड़ की ओर गया। उनमें से दो युवा वृद्ध के पास पहुंचे और उनसे बड़ी विनम्रता से पूछने लगे – क्या बात हो गई दादाजी? वृद्ध कहे जा रहे थे–"बेटा, इस टिकट पर यही नंबर लिखा है। मगर...मगर ये उठने को बोल रहे हैं।"

अधेड़ अब भी अकड़कर ही बात कर रहा था। उनमें से एक युवा बोला– "अंकल आप इतना नाराज़ किस बात के लिए हो रहे हैं, आपकी सीट पर आप ही बैठेंगे मगर आप इन बूढ़े इंसान पर झल्लाएं तो नहीं।" अधेड़ बोला– "रातभर जागना नहीं चाहता मैं।" युवा बोला– "ऐसा कुछ भी नहीं होने का।" उनमें से एक युवा ने वृद्ध से टिकट लेकर देखा और उस अधेड़ से "सॉरी" बोलते हुए कहा – दरअसल इनका सीट नंबर तो सही है, मगर इनका कोच अलग है। इनसे ग़लती हो गई है। इनकी ओर से मैं आपसे सॉरी बोलता हूं। युवाओं ने उस वृद्ध से कहा कि आप चिंता न करें। आपका सामान हम उठाकर आपको दूसरे कोच में पहुंचा देंगे। उस वृद्ध का सामान उठाकर वे युवा लोग उनको दूसरे कोच में सही–सलामत छोड़कर फिर से अपनी चर्चाओं में डूब गए।

रेल में सफ़र कर रहे जो लोग अब तक युवाओं के प्रति हीन भावना अपने मन में बिठाए हुए थे, वे उससे मुक्त होते लग रहे थे। कुछ देर बाद मैंने उनसे पूछा कि आपका रिजर्वेशन है या नहीं? इस पर उन्होंने बड़े ही सहज और सम्मान के साथ कहा– "हममें से ज़्यादातर लोगों का रिजर्वेशन है। आपको हुबली तक हमसे तक़लीफ़ हो सकती हैं।" दरअसल ये कॉलेज में अध्ययनरत युवा लोग हुबली में किसी कार्यक्रम में जा रहे थे।

इस बीच हमने देखा कि युवा और युवतियों ने जो कुछ भी खाया था, खाने के बाद पॉलीथीन, काग़ज़

वगैरह को सीटों के नीचे फेंकने के बजाय उसको बटोरकर अपने पास ही संभालकर रख लिया। बल्कि उन्होंने सीटों के नीचे चाय–कॉफी के डिस्पोजेबल कप और नमकीन के रैपर वग़ैरह को भी उठाकर एक पॉलीथीन में समेट लिया। जब रेल रुकी तो उनमें से एक युवक प्लेटफार्म पर उतरा और वह कचरे को डालने के लिए कोई कूड़ेदान की तलाश कर रहा था। मगर जब उसे कूड़ादान नहीं मिला तो वह उस कचरे की पॉलीथीन को वापस लेकर आ गया और उसे अपनी बर्थ के कोने में रख दिया।

जिस तहज़ीब के साथ युवा हमारे से पेश आए थे, उससे हमें न केवल राहत मिली बल्कि हमारे दिलों–दिमाग़ में जो शक की ग्रंथियां पनपी हुई थीं, वो कमज़ोर हो रही थी। युवाओं के प्रति जो धारणाएं, अब तक हमारी बनी हुई थीं वे निराधार साबित हो रही थीं। मैं सोच रहा था कि आख़िर हम युवाओं के प्रति नकारात्मक रवैया क्यों अपना बैठते हैं? आख़िर समाज युवाओं के प्रति संशय का भाव क्यों रखता है? बहरहाल, यह सोचते हुए मैंने मोबाइल की घड़ी में वक्त देखा जो सवा ग्यारह से थोड़ा ज़्यादा बजा रही थी। अब तक कोच में प्रौढ़ स्त्री–पुरुष सोने की तैयारी में थे। कहीं–कहीं से खर्राटों की आवाज़ भी आ रही थी। ऊपर की बर्थ पर लेटे हुए एक व्यक्ति ने इतना भर ही कहा कि 'भाई अब लाइट बंद कर दो हमें सोना है।' इसके बाद उन युवा–युवतियों की चर्चा और हंसी की तीव्रता अचानक कम हो चुकी थी।

मैं रेल में सफ़र के दौरान अपने जीवन के सफ़र में चल पड़ा। मैं महसूस कर रहा था कि अपने बचपन और युवावस्था के दौरान मैं और अपने दोस्त लोग भी इसी शक और उपेक्षा का शिकार हुए थे। हमारे अपने सपने होते थे। कुछ सपने ख़ुद को बेहतर स्थिति में ले जाने के होते थे। मगर फिर भी ऐसा कुछ होता था कि समाज के उम्रदराज लोग हम पर शक करते थे। और यह हम अच्छे से समझते थे कि बड़े वे चाहे हमारे पिताजी ही क्यों न हो, हम पर शक की माइक्रोस्कोपिक और टेलिस्कोपिक नज़रें गड़ाए रखते थे। दरअसल यह शक अविश्वास का शक होता था। अविश्वास इस बात का कि ये कुछ गड़बड़ करेंगे, अराजकता फैलाएंगे। हमारी इज़्ज़त का फलूदा बनाएंगे। शक इस बात का कि ये समाज के क़ायदों–क़ानूनों की अवहेलना करेंगे।

दरअसल युवाओं पर शक करने की यह प्रक्रिया समाज में एक चक्र के रूप में चलती जाती है। बचपन और युवावस्था से गुज़रकर जब व्यक्ति प्रौढ़ की श्रेणी में आ जाता है तो वह प्रौढ़ भी "ज़िम्मेदार नागरिक" पर शक करता है। यह सोचते हुए मुझे एक मक़बूल शायर (माफी के साथ कि इन शायर का नाम पता नहीं है) के शेर की ये पंक्तियां याद आ गई जो समाज में चल रहे कुचक्र को बड़ी ही सरलता से बखान करती हैं –

बड़ों की जितनी भी गालियां थीं,
बच्चों की ज़ुबां तक पहुंची।

लेकिन हमारे शहर में तालीम भी कहां तक पहुंची।

कर्म और शिक्षा का सम्बन्ध

★ भानू भाई भट्ट

3–5 नवम्बर 2009 को विद्या भवन सोसायटी द्वारा 'बुनियादी शिक्षा : आगे कैसे बढ़े?' विषय पर आयोजित राष्ट्रीय सेमिनार की चर्चा से उदृधत यह आलेख यहां प्रस्तुत किया जा रहा है।

कर्म और शिक्षा का सम्बन्ध कैसा होना चाहिए, इस बारे में हमने बहुत कुछ पढ़ा, सोचा और अपनी संस्थाओं में हम चर्चा करते हैं। यह हमारी सांस्कृतिक परम्परा है। कई ऋषि–मुनियों से लेकर महापुरुषों के जीवन को देखते हैं, तो हमें दिखाई देता है कि कर्म के बिना कुछ भी सम्भव नहीं है। जीवन भी कर्म के बिना सम्भव नहीं है। यह प्राथमिक बात जीवन के बारे में हम सोच लें और हम बच्चों को पढ़ाते हैं, उसमें कर्म किस तरह होना चाहिये? इसके बारे में विचार कर लें। शिक्षा के साथ कर्म के सम्बन्ध के बारे में मेरा अनुभव यह है कि मेरी सारी पढ़ाई बुनियादी तालीम में हुई है। मैं 25 साल से इस क्षेत्र में काम कर रहा हूं। जब हम शिक्षा के साथ काम करते हैं, श्रम करते हैं, इससे बच्चे को इन्द्रीय अनुभव मिलता है जो बहुत ज़रूरी है। सिर्फ़ पढ़ाना और गाना काफ़ी नहीं है। लेकिन हमारा कान, पांव, आखें, स्पर्श जब हम उपयोग में लेते हैं तब यह शिक्षा ज़्यादा शाश्वत बनती है और ज्ञान जो मिलता है वो ज्ञान ठीक तरह से हम पा सकते हैं। शिक्षा के साथ तरह–तरह के अनुभव हमें मिलने चाहिए। इससे और कई लाभ मिलते हैं। लाचारी

★ ग्राम दक्षिणामूर्ति, आमला, भावनगर (गुजरात) में कार्यरत हैं।

दूर होती है, क्योंकि आज शिक्षित लोगों, शिक्षित बच्चों को, पढ़ाई के बाद डिग्री प्राप्त करने के बाद, कम लोगों को नौकरी मिलती है। अन्त में हम लाचार होकर बहुत कम दाम में काम करने को तैयार हो जाते हैं। इसके स्थान पर ऐसी शिक्षा, जिसमें बच्चा प्रवीण होकर अपनी शक्ति से कुछ काम करने के लिए तैयार होता है। हमारे अनिल भाई जब प्राथमिक शिक्षा करवाते थे, तब उन्होंने सब बच्चों को कहा कि कल से सबको अपने सिर पर तेल लगाकर अच्छे कपड़े पहनकर आना है। सब बच्चे घर जाकर मां–बाप से बोले कि हमें यह चाहिए। यह आज से 40–50 वर्ष पूर्व की बात है। मां–बाप के पास पैसे नहीं थे, वे बोले कि हमारे पास पैसा नहीं है, जाओ शिक्षक को बोल देना। बच्चे स्कूल में आकर सोचने लगे कि क्या करें। तब उन्होंने सूत बैंक की शुरुआत की। बच्चों से कताई करवाकर और सूत तैयार करके उसे सूत बैंक में लाए और उसके बदले उनको पैसे मिले। उस पैसे से वे साबुन, तेल आदि ख़रीदकर अपना काम चला सके। यह प्रयोग काफ़ी सफल रहा। दूसरा प्रयोग, कमरा बनाने का था। क्योंकि तब कमरा नहीं था और बच्चे पेड़ के नीचे बैठकर पढ़ते थे। शिक्षक, बच्चों, भाई–बहिन सभी ने सोचा कि कमरा तो चाहिए, बारिश और ताप में। लेकिन ज़िला परिषद् को बार–बार लिखने पर भी कमरा मंज़ूर नहीं हुआ। सबने बैठकर तय किया कि हम अपने आप कमरा बनवायेंगे, सरकार से भीख नहीं मांगेंगे। कमरा बनाने के लिए नक़्शा बनवाया गया, मिट्टी लाई गई और थोड़े दिनों में ही बहुत ही अच्छा कमरा तैयार हो गया। वह आज भी मौजूद है। श्रम करके बच्चों ने कमरा बनाया। यह बुनियादी शाला में श्रम का योगदान है। श्रम से बच्चों में जो आत्मविश्वास बढ़ता है, उससे वे सारा जीवन अच्छी तरह सिर ऊंचा कर जी सकते हैं। ऐसा अनुभव यहां हुआ है। मैं जब आमला में पढ़ता था, तब हम कपास के संकरण की प्रक्रिया करते थे, हमने हाइब्रिड कपास पैदा करने का काम बहुत लगन से किया और इससे जो मुनाफ़ा हुआ उसमें से हमारा 18 दिन का उत्तर प्रदेश का प्रवास हुआ था। यह मुझे आज गर्व की बात लगती है, क्योंकि पढ़नेवालों को अपने मां–बाप पर बोझ नहीं बनना चाहिए। इसकी कोशिश हम नई तालीम व श्रम के ज़रिये कर सकते हैं। ऐसा करना और करवाना बहुत कठिन भी नहीं है, लेकिन यह असम्भव भी नहीं है। जो छात्र ऐसा काम करके हमारे यहां से गये हैं और आज जब मिलते हैं, तो बहुत गौरव व आत्मविश्वास से कहते हैं कि यहां हमने जो कुछ किया है, वह हमने पाया है, ऐसा बहुत कम बाहर मिलता है। यह दर्शाता है कि अगर श्रम और कर्म सही तरीक़े से बच्चों के सामने रखें, तो उससे बच्चों

बच्चे पेड़ के नीचे बैठकर पढ़ते थे। शिक्षक, बच्चों, भाई–बहिन सभी ने सोचा कि कमरा तो चाहिए, बारिश और ताप में। लेकिन ज़िला परिषद् को बार–बार लिखने पर भी कमरा मंज़ूर नहीं हुआ। सबने बैठकर तय किया कि हम अपने आप कमरा बनवायेंगे, सरकार से भीख नहीं मागेंगे। कमरा बनाने के लिए नक़्शा बनवाया गया, मिट्टी लाई गई और थोड़े दिनों में ही बहुत ही अच्छा कमरा तैयार हो गया।

को आनन्द मिलता है। लेकिन आज कल तो वह बोझ रूप लगता है, क्योंकि शिक्षा संस्थाओं में कर्म का काम हम अमलदार से करवाते हैं तब बच्चे मज़दूर बन जाते हैं और अमलदार और मज़दूर का सम्बन्ध होने पर शिक्षा नहीं रह जाती है। शिक्षा में प्रेम, भयमुक्त वातावरण, परम्परा का भाव होना चाहिए, यह कर्म से ही संभव हो सकता है। कक्षा में पढ़ाई के दौरान निकटता का कम मौक़ा रहता है। कर्म के कई असर होते हैं। दिल और दिमाग़ से भी इसका जुड़ाव है। सिर्फ़ पैदावार या मुनाफ़ा ही नहीं होता है, लेकिन हमारी बुद्धि, हमारा दिल और हमारा दिमाग़ भी उनके साथ विकसित होता है। यह शिक्षाशास्त्री भी कहते हैं तथा परीक्षा परिणाम भी यही दर्शाते हैं। गांधीजी ने जो '3 एच' की बात की है, तो हम उनकी शिक्षा दे सकते हैं। लेकिन आज शिक्षा में श्रम कैसा होना चाहिए? कर्म और शिक्षा के बीच सम्बन्ध ऐसा हो जो आनन्ददायक हो। बच्चों की रुचि के अनुसार उनके श्रम का आयोजन किया जाना चाहिए। दूसरी बात, श्रम फलदायी होना चाहिए तभी बच्चे को उसमें रुचि होगी। जब हम बच्चों को काम सौप देते हैं तब उनको इसमें इतना आनन्द नहीं मिलता है। लेकिन जब शिक्षक उनके साथ जुड़ जाते हैं, तब उनको ज़्यादा आनन्द मिलता है। जो पैदावार होती है, उसमें से बच्चों को कुछ वापस भी मिलना चाहिए। हमारे यहां श्रम बैंक का भी आयोजन किया गया है। तीन साल में जो बच्चा पढ़ाई के अलावा काम करता है उसको हम 50 टका संस्था की ओर से देते हैं। इससे उनमें रुचि रहती है।

जब हम बच्चों को काम सौप देते हैं तब उनको इसमें इतना आनन्द नहीं मिलता है। लेकिन जब शिक्षक उनके साथ जुड़ जाते हैं, तब उनको ज़्यादा आनन्द मिलता है। जो पैदावार होती है, उसमें से बच्चों को कुछ वापस भी मिलना चाहिए।

एक रास्ता यह भी

★ साधना देवेश

शिक्षा सभी बालकों का अधिकार है तथा सभी को समान अवसर प्राप्त होने चाहिए। आज भारत में भी इस बात से कोई इंकार नहीं कर सकता। 6 से 14 वर्ष तक के बालकों के लिए 86 में संविधान संशोधन द्वारा शिक्षा को एक मौलिक अधिकार बनाया गया। गांधीजी ने 'नई तालीम' के दूसरे सोपान पर 7 से 15 वर्ष के बालक–बालिकाओं के लिए बुनियादी तालीम की व्यवस्था दी। गांधीजी ने 'नई तालीम' को 'जीवन–भर के लिए तालीम' माना। बापू के अनुसार शिक्षा बेरोज़गारी के विरूद्ध एक प्रकार का बीमा होना चाहिए। बेकारी की जड़ काटते हुए शिक्षा दी जानी चाहिए। बुनियादी शिक्षा हिंदुस्तान के व्यक्ति की भौतिक आवश्यकताएं पूरी करती है तथा सामाजिक उद्देश्यों की पूर्ति के साथ स्वावलम्बी व्यक्ति को औद्योगिक प्रक्रिया के माध्यम से बौद्धिक सांस्कृतिक विकास द्वारा सुविकसित स्वतंत्र नागरिक भी बनाती है। बुनियादी शिक्षा 7 से 15 वर्ष के बालक–बालिकाओं के शिक्षा के मौलिक अधिकार की पैरवी करती है।

रोज़ी–रोटी की व्यस्तता में डूबे माता–पिता अपने बच्चों को स्कूल भेजकर उनकी ओर से निश्चिंत हो जाते हैं। उम्मीद करते हैं कि शिक्षक अपनी जिम्मेदारी से उन्हें 'व्यक्ति' बना देगा। जबकि सोलह वर्ष की खर्चीली तपस्या के बाद का वह व्यक्ति जीविकोपार्जन के उचित जरिए की तलाश में खुद को समायोजित नहीं कर पाता और एक मानसिक टूटन उसमें घर कर जाती है।

मनोवैज्ञानिकों, शिक्षाशास्त्रियों ने शिक्षक पर तमाम अपेक्षाएं डालकर उसे खुद में इतनी क्षमता लाने के लिए तैयार करवाया है ताकि बालक के विकास में शिक्षक की कोई ख़ामी आड़े न आए। मनोवैज्ञानिक शिक्षक को बालक के अक्षर ज्ञान से चलकर उसकी प्रवृत्तियों तक को सुधारने का जिम्मेदार ठहराते हैं। उम्मीद करते हैं कि शिक्षक बालक को खुली किताब की तरह आद्योपांत जानें। परंतु बालक फिर भी ऐसा क्यों नहीं करता जिसकी हम अपेक्षा रखते हैं। यहां कई दूसरे कारण भी हैं। परिवार अपनी जिम्मेदारी कितनी याद रखते हैं? सर्वेक्षणों से ज्ञात होता है कि सर्वाधिक प्रयुक्त मनोरंजन का साधन टी.वी. या सिनेमा है और वह जिस ढंग से सामग्री दे रहा है उसे प्रदर्शित करने के बाद हम अपेक्षा रखते हैं कि जो विकृतियां बालकों में आएं शिक्षक उन्हें सुधारें और जहां शिक्षक नहीं है वहां...?

वे व्यक्ति जो बाल्यावस्था से ही मेहनत, मज़दूरी में जुट जाते हैं पूरी उम्र अंगीठियों के सामने सिकते हैं,

★ मातुश्री अहिल्या देवी टीचर्स एज्युकेशन इंस्टीट्यूट, इंदौर में रीडर हैं।

झूठे प्याले, तश्तरियां धोते हुए कान फोड़नेवाला संगीत सुनते हैं, कई किशोर होते ही कारखानों में कामगार हो जाते हैं, फुटपाथ और सड़कों पर वे अखबार रिसाले बेचते नंगे पैरों फिरते हैं, जिन्हें वे खुद नहीं पढ़ पाते। फेरी लगाते समाज की विसंगतियों का सामना करते हैं, उन्हें कौन–सा शिक्षक मानसिक रूप से स्वस्थ बनाए?

शारीरिक स्वास्थ्य का प्रश्न हम नहीं उठा सकते। संतुलित आहार का सरोकार उनसे नहीं है। वे पर्याप्त आहार भी मयस्सर नहीं कर पाते। पेट भरने के लिए उन्हें संघर्ष और प्रयास करने पड़ते हैं। दयादृष्टि नज़रअंदाज़ कर देती है। अपराधवृत्तियां बढ़ती जा रही हैं। सामाजिक वातावरण का प्रदूषण भी इसके लिए जिम्मेदार है। सांवेगिक सुरक्षा, नौकरों पर बालक की निर्भरता, अत्याधिक अकेला रहना आदि परिस्थितियां आगे चलकर उसे अपराध की ओर प्रवृत्त करती हैं क्योंकि इस तरह वह स्वयं को ध्यानाकर्षण का केंद्रबिंदु बना लेता है। अनाथ बच्चे पेशेवर अपराधियों के प्रश्रय में कुटते–पिटते हुए पनप ही जाते हैं। भूख और बेगारी के कारण होने वाले अपराधों का पलड़ा और भी भारी है। हमारे देश में दरहकीकत तमाम श्रमिक कानूनों के

महंगे शुल्क वाले धनाढ्य प्राइवेट स्कूल तथा सरकारी शालाएं मध्याह्नकालीन अल्पाहार (मिड डे मील) का प्रावधान रखती हैं, निरक्षर बच्चों के लिए जो सुबह की रोटी के लिए, रात को ओढ़ने के लिए पढ़ने आने की बजाए नौकरी, मज़दूरी में जुटे हैं, उत्पादनमुखी स्वावलंबी शिक्षा का सरंजाम क्यों नहीं किया जाता, जो इनके भरण–पोषण के साथ–साथ उन्हें जीविकोपार्जन का रास्ता भी दे। कार्यानुभव के उनके कौशलों को प्रोत्साहन मिलें।

महंगे शुल्क वाले धनाढ्य प्राइवेट स्कूल तथा सरकारी शालाएं मध्याह्नकालीन अल्पाहार (मिड डे मील) का प्रावधान रखती हैं, निरक्षर बच्चों के लिए जो सुबह की रोटी के लिए, रात को ओढ़ने के लिए पढ़ने आने की बजाए नौकरी, मज़दूरी में जुटे हैं, उत्पादनमुखी स्वावलंबी शिक्षा का सरंजाम क्यों नहीं किया जाता, जो इनके भरण–पोषण के साथ–साथ उन्हें जीविकोपार्जन का रास्ता भी दे। कार्यानुभव के उनके कौशलों को प्रोत्साहन मिलें।

राष्ट्र के नैतिक उत्थान का प्रश्न उठाते हुए बाल–अपराधियों के बढ़ते आंकड़े हमें चौंकाते नहीं। इनकी प्रवृत्तियों के स्वस्थ या अस्वस्थ होने की कोई समस्या हमें सालती क्यों नहीं? अपराध के पीछे अभाव को कारण मानते हुए भी चोरी करने वाले को बावजूद ख़रीदे गए गुलामों की तरह खासा शोषण आज बाल–वर्ग का हो रहा है। पिता के साथ खेत में जुटे, वर्कशाप की कालिख में लिपटे बालक इस अनौपचारिक कार्य–प्रक्रिया में आगामी जीवन के लिए सही शिक्षा पा रहे हैं। हमारा सारा आग्रह उनके प्रति है जिनका अपना पुश्तैनी धंधा नहीं है और मौकापरस्त मालिकों के मनचाहे रवैये में उन्हें रौंदा जा रहा है। शिक्षालय में उनके लिए उसे शिक्षा योजना की दरकार है जो उन्हें कार्यानुभव के साथ–साथ उनके द्वारा निर्मित वस्तुओं के विक्रय, उपभोग द्वारा उचित मूल्य प्रदान करवाए यानी सीखना भी और कमाई भी।

कृषि प्रधान, कर्म प्रधान भारत के लिए उद्योग के माध्यम से शिक्षा का प्रारूप गांधी जी ने रखा। उस

समय (1937) सम्मेलन में आए देश के शिक्षाशात्रियों की अस्वीकृति इस कारण से थी कि ''इससे बच्चों की गुलामी बढ़ेगी और उन पर उत्पादन का बोझ लद जाएगा।'' देश गरीब है, गरीबी होते हुए भी सार्वजनिक शिक्षण आवश्यक है इत्यादि दलीलों को वे मानते थे। लेकिन गरीबी के कारण बच्चे से उत्पादन करवाया जाए, यह उन्हें मान्य नहीं था। जो लोग स्वावलंबन के विरोधी थे, वे यह कहते थे कि बच्चों की मुफ्त शिक्षा के लिए सरकार जिम्मेदार है। बच्चों को पढ़ाई के साथ, कमाई करने के लिए विवश नहीं किया जाना चाहिए। शिक्षाशास्त्रियों के इस विरोध के बावजूद गांधीजी शिक्षा के स्वावलंबन के विचार पर दृढ़ रहे। जीविका तथा नित दिन के वातावरण से हटा कर दी गई शिक्षा को गांधीजी जीवन–शिक्षा नहीं मानते।

शिक्षा को सर्वांगीण विकास का साधन मानने पर –स्वावलंबन प्रधान शिक्षा' उनके द्वारा उत्पादित वस्तुओं का उचित मूल्य बालकों को प्रदान करवाएगी। यह शिक्षा बालकों की शारीरिक, आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति कर मानसिक संतुष्टि प्रदान करने में सक्षम है। यहां शिक्षा का उद्देश्य 'सा विद्या या विमुक्तये पूर्ण होता प्रतीत होता है। मुक्ति से यहां तात्पर्य मानवीय समस्याओं के हल एवं समायोजन से है। लघु उद्योगों, कुटीर उद्योगों में हस्त उद्योग को प्रश्रय देते हुए शाला कार्यक्रम में स्वावलम्बी शिक्षा बुनियादी शिक्षा को लागू कर ग्राम स्वराज्य पाया जा सकता है। विश्व में गांधीजी की शिक्षा विचारधारा अपनी पहचान बनाने व व्यावहारिक रूप से पूर्ण होते हुए भी शिक्षण के रूप में पहले दक्षिण अफ्रीका में मान्य हुई जहां गांधीजी ने टॉलस्टाय फार्म में अपनी कर्मप्रधान स्वावलंबी शिक्षा का प्रयोग किया था। हिंदुस्तान को आज ज़रूरत है कि गांधीजी के बुनियादी शिक्षा के प्रत्यय को विचारें, अपनाएं। डॉ. अवध प्रसाद ने अपने लेख 'शिक्षा की हिलती बुनियाद' में लिखा है–

''राष्ट्रपिता महात्मा गांधी को इस धारणा की अभिव्यक्ति का श्रेय है कि विकास की प्रक्रिया में 'व्यक्ति' आधार है, केंद्र बिंदु है। गांधीजी ने व्यक्ति के जीवन को समाज का प्रतिबिंब माना और व्यक्ति के जीवन एवं व्यवहार से ही समाज के स्तर, विकास की पहचान एवं सत्य विचार को प्रतिपादित किया।''

गांधीजी के नई तालीम विद्यालय में श्रम के साथ जो शिक्षा दी गई वह गणित, विज्ञान, कृषि–विज्ञान, उद्योग के साथ शिक्षा का प्रयोग था। श्रम आधारित शिक्षा में सभी कार्यों का समान महत्त्व बालक के मानस पर सकारात्मक प्रभाव डालने में समर्थ है।

बाल एवं युवा शक्ति को जीवनोपयोगी शिक्षा की सुविधा उपलब्ध करवाना ही शिक्षा का बुनियादी उद्देश्य है। बाल शिक्षण को भावी समाज का दर्पण माना गया है, जिसकी बुनियाद भी शिक्षा में निहित है। आज चिंतन के मुख्य छह विषयों में आजीविका, सशक्तीकरण, स्त्री–पुरूष समानता, कृषि, औद्योगिकरण और ग्रामीण दस्तकारों की सेवाएं–शामिल हैं। इन मुद्दों को शिक्षा के साथ कैसे जोड़ा जाए इस पर विचार किया जाना अनिवार्य है। इस हेतु गांधीजी द्वारा बुनियादी शिक्षा के क्षेत्र में किए गए प्रयोग का स्मरण करना सामयिक होगा।

भारतीय आधुनिक शिक्षा–जनवरी 2010 पत्रिका से साभार।

गतिविधि

सममिति

नीचे बने चित्रों को देखो–

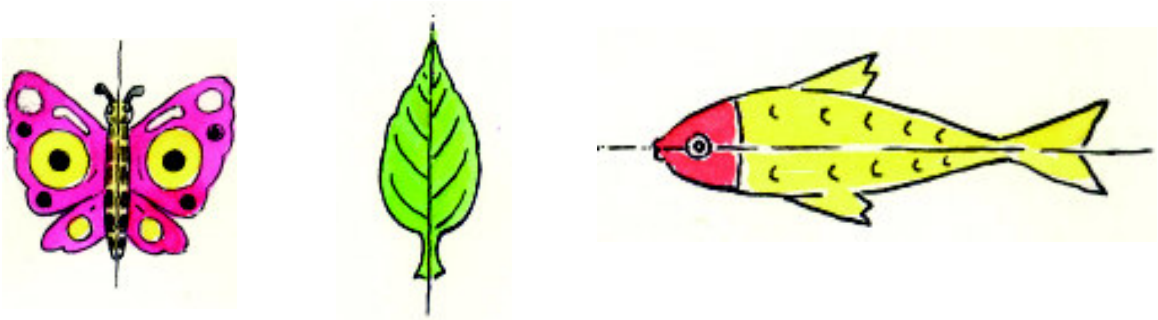

सभी चित्रों के बीचों बीच रेखा खींची गई है।

क्या ये चित्र रेखा के दोनों ओर एक जैसे हैं?

नीचे कुछ और चित्र दिए गए हैं। उनमें भी ऐसी रेखा खींची गई है। कुछ चित्र रेखा के दोनों ओर एक जैसे हैं। उन्हें पहचानो और रंग भरो–

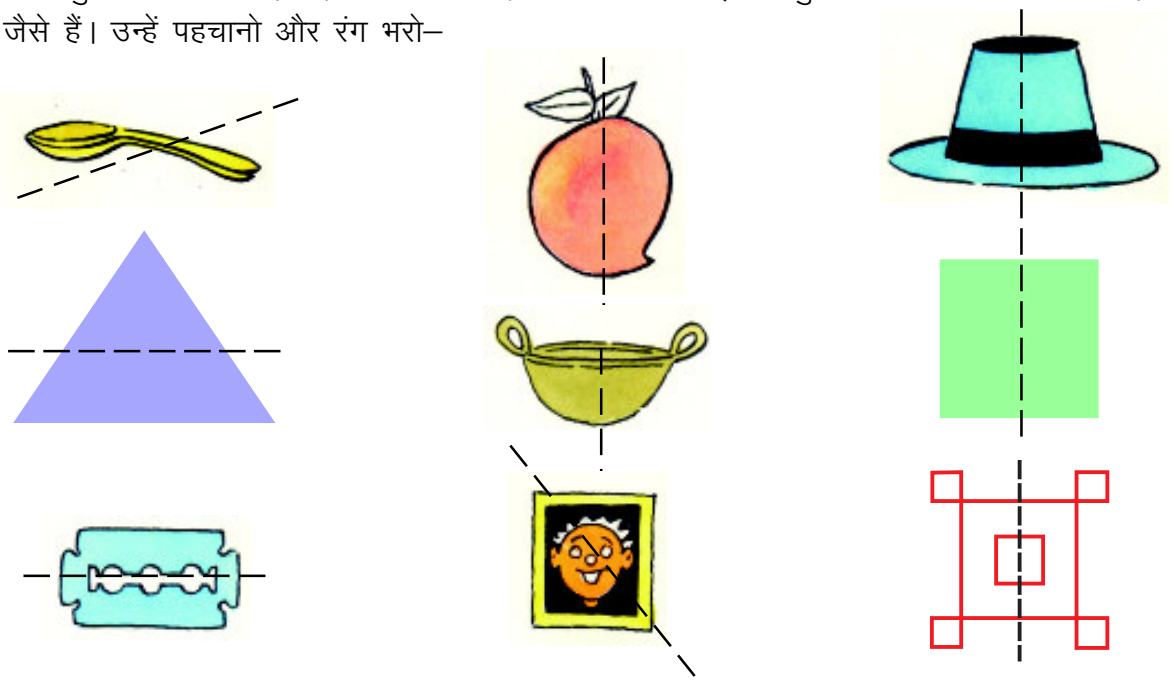

यह भी करो

- एक काग़ज़ को बीच से मोड़ो।
- काग़ज़ खोलकर उस पर स्याही की कुछ बूंदें टपकाओ।
- फिर उसे उसी मोड़ पर मोड़ो व दबाओ
- अब काग़ज़ को खोलो। तुम्हें मोड़ के दोनों ओर एक आकृति मिलेगी

हमने भी यहां तुम्हारे लिए इसी तरह एक आकृति बनाई है।

यह आकृति और तुम्हारे द्वारा बनाई गई आकृति दोनों सममित आकृतियां है।

अब यह करो

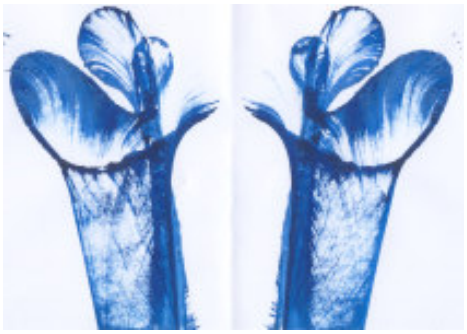

एक काग़ज़ को बीच से मोड़ो। एक धागा लो और उसको स्याही से गीला करो। फिर धागे को काग़ज़ के बीचों बीच रखो। अब काग़ज़ को बाएं हाथ की हथेली से दबाओ और दूसरे हाथ से धागे का एक सिरा पकड़कर वापस खींच लो। काग़ज़ को खोलो और देखो।

क्या मोड़ के दोनों ओर एक जैसी आकृति बनती है?

ऊपर की गतिविधियों में तुमने देखा कि मोड़ के दोनों ओर एक जैसी आकृतियां बनती हैं।

ऐसी आकृतियों को **सममित आकृतियां** कहते हैं तथा जिस लकीर के दोनों ओर एक जैसी आकृतियां बनती हैं उस लकीर को **सममित अक्ष** कहते हैं।

अभ्यास

नीचे बनी आकृतियों में सममित अक्ष पहचानो और उस पर पेंसिल से लाइन खींचो।

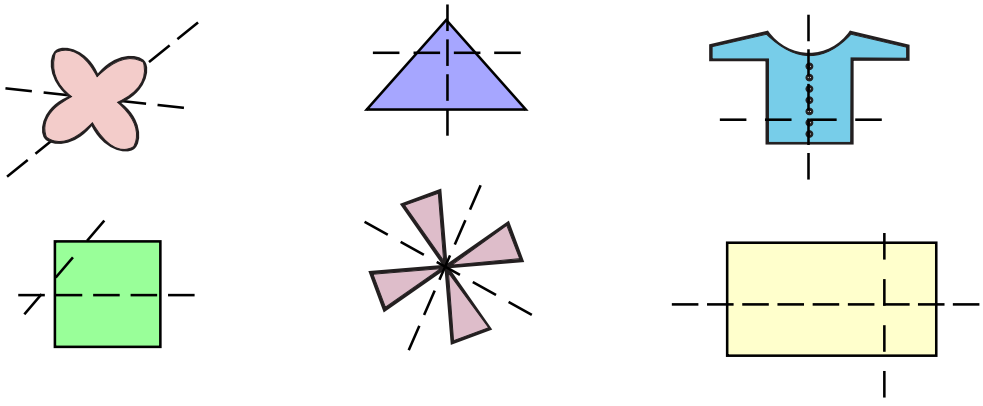

करके देखो

एक रंगीन काग़ज़ लेकर बीच से मोड़ लो। चित्र में दिखाए अनुसार कैंची से कोई आकृति काटो। काग़ज को खोलो। देखो।

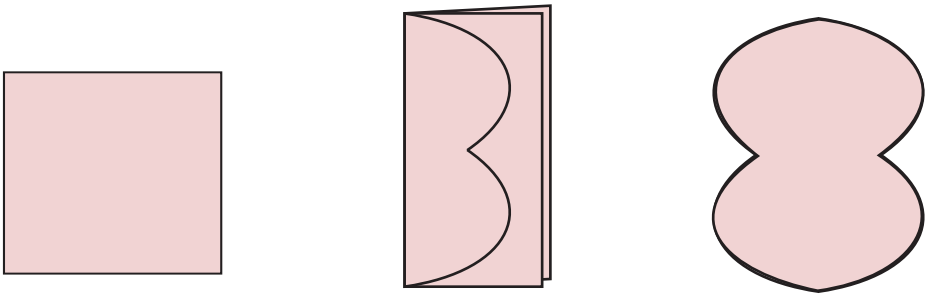

क्या तुमने इस तरह काग़ज़ को काटते हुए किसी को देखा है? कहां?

यही काम काग़ज़ को एक से अधिक बार मोड़कर करो। मज़ेदार आकृतियां मिलेंगी जिसका उपयोग अपनी कक्षा या कमरे को सजाने में कर सकते हैं।

आओ मुखौटा बनाएं

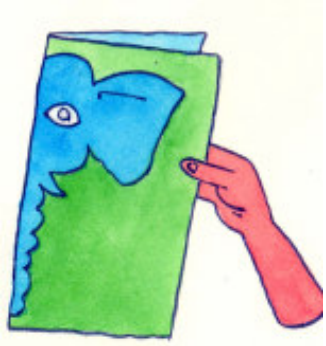

1. एक काग़ज़ को बीच से मोड़ो।
2. उस पर पेंसिल से चित्र के अनुसार आधा चेहरा बनाओ।
3. कैंची से आंख, और कोने काटकर अलग करो।
4. काग़ज़ खोलो। अब मुखौटा तैयार है।

इसी प्रकार तुम और भी तरह–तरह के मुखौटे बना सकते हो।

अभ्यास

नीचे दिए गए चित्रों में सममित अक्ष खींचो।

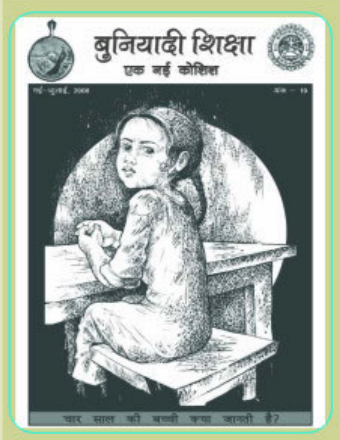

बुनियादी शिक्षा
एक नई कोशिश
के
पूर्व
प्रकाशित
अंक

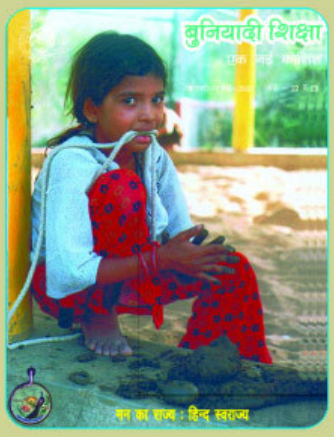

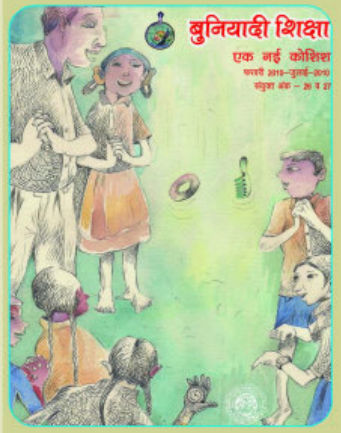

बीतती जाती बेला

रवीन्द्रनाथ ठाकुर

बीतती जाती बेला
उठो, अब जागो, करो न देर,
खोलकर आंखें देखो तो,
कभी की हुई यहां पर भोर।
खिल गये कंटक–वन में फूल,
उठो, अब करो और मत भूल।
कठिन पथ के जाने किस छोर,
बिजन में कहां, अरे, किस ओर,
अकेला फिरता है वह बंधु,
करो मत उसकी अवहेला!
बीतती जाती है बेला।
भले ही, प्रखर हुआ रवि–ताप,
शुष्क वह गगन रहा है कांप,
तृषा ही फैली है चहुं ओर,
रेत ने लिया सभी ढांप।
जगा ले तू, पर, मन का छंद,
चाहिए उसको भी आनंद।
रखोगे जब तुम पथ पर पांव,
तपेंगे निश्चय वे बिन–छांव,
किंतु उस पीड़ा का संगीत,
मधुर छेड़ेगा तुम में तार–
चलाता तुमको जायेगा,
ताप जायेगा सब झेला–
उठो, अब जागो, करो न देर,
बीतती जाती है बेला।

(रवीन्द्रनाथ टैगोर के 150 वें जयन्ती वर्ष पर प्रस्तुत यह कविता उनकी नोबेल पुरस्कार प्राप्त रचना 'गीतांजली' से संकलित है जिसका हिन्दी काव्यानुवाद प्रयाग शुक्ल ने किया है।)